# पूर्वांचल खेती

वर्ष : 30 अगस्त 2020 अंक : 08

प्रसार निदेशालय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

# पूर्वांचल खेती

**प्रसार निदेशालय**

**आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय**

**कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)**

# पूर्वांचल खेती

वर्ष 30 | अगस्त, 2020 | अंक 08



**संरक्षक**

**डॉ. बिजेन्द्र सिंह**

कुलपति

**प्रधान सम्पादक**

**प्रो. ए. पी. राव**

निदेशक प्रसार

**तकनीकी सम्पादक**

**डॉ. आर. आर. सिंह**

प्राध्यापक, मृदा विज्ञान

मो. नं. 9450938866

**सम्पादक मण्डल**

**डॉ. अनिल कुमार**

सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

**डॉ. वी. पी. चौधरी**

सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

**डॉ. पंकज कुमार**

सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

**सम्पादक**

**उमेश पाठक**

मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है


## विषय सूची


धान के प्रमुख कीट, रोग एवं उनका नियंत्रण 01
—पंकज कुमार एवं वी.पी. चौधरी

लेमन ग्रास की उन्नत खेती 04
—डॉ. राम सुमन मिश्रा एवं डॉ. ओ.पी. राव

गन्ने की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग, कीट एवं उनका प्रबंधन 06
—अंकज तिवारी, डॉ. विनोद सिंह, डॉ. डी.के. द्विवेदी, शिवम दुबे

मशरूम उत्पादन की उन्नत तकनीक 07
—अंकित गौतम एवं डॉ. सुबोध कुमार पाण्डे

फास्फोरस घुलनकारी जीवाणु आधारित जैव उर्वरक का प्रयोग कर फास्फेटिक उर्वरक की बचत करें 09
—आदेश कुमार, शम्भू प्रसाद एवं पंकज कुमार

फल वृक्ष आधारित बहुस्तरीय फसल प्रणाली 10
—रवि प्रताप सिंह, अनिल प्रताप राव एवं अरूण कुमार सिंह

निरंतर गिरते भूमिगत जल के स्तर का प्रबंधन 12
—संदीप कुमार पाण्डेय, प्रमोद कुमार मिश्र, सुशील कुमार पाण्डेय एवं एच.सी. सिंह

ग्रामीण महिलायें आत्मनिर्भर कैसे बनें? 16
—विभा परिहार एवं डी.के. द्विवेदी

किसान बहनों के लिए अतिरिक्त आय का स्रोत दुग्ध से बने उत्पाद 18
—रूमा देवी

मछलियों के प्रमुख रोग एवं प्रबंधन 20
—रवि कुमार, ए.पी. राव, एस.के. सामल एवं लक्ष्मी प्रसाद

गोवंशीय पशुओं में संक्रामक गर्भपात (ब्रुसैलोसिस) का निदान व बचाव के उपाय 23
—डी.डी. सिंह, एस.एन. लाल, एस.के. यादव एवं ए.पी. राव

अगस्त माह में किसान भाई क्या करें 26

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के 27


**बॉक्स सूचनाएं**


अमूल्य सुझाव 25



**प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या**

## विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

| क्र. सं. | कृषि विज्ञान केन्द्र | वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/ प्रभारी अधिकारी | मोबाइल | दूरभाष कार्यालय |
|---|---|---|---|---|
| 1. | वाराणसी | डॉ. संजीत कुमार | 9837839411 | 05542–248019 |
| 2. | बस्ती | डॉ. एस. एन. सिंह | 9450547719 | 05498–258201 |
| 3. | बलिया | डॉ. रवि प्रकाश मौर्य | 9453148303 | – |
| 4. | फैजाबाद | डॉ. शशिकान्त यादव | 9415188020 | 05278–254522 |
| 5. | मऊ | डॉ. एस. एन. सिंह चौहान | – | 0547–2536240 |
| 6. | चंदौली | डॉ. एस. पी. सिंह | 9458362153 | 0541–2260595 |
| 7. | बहराइच | डॉ. एम. पी. सिंह | 9415172725 | 05252–236650 |
| 8. | गोरखपुर | डॉ. सतीश कुमार तोमर | 9415155818 | – |
| 9. | आज़मगढ़ | डॉ. के. एम. सिंह | 9307015439 | – |
| 10. | बाराबंकी | डॉ. शैलेश कुमार सिंह | 9455501727 | |
| 11. | महाराजगंज | डॉ. डी. पी. सिंह | 9451430507 | – |
| 12. | जौनपुर | डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया | 9984369526 | – |
| 13. | सिद्धार्थनगर | डॉ. एल. सी. वर्मा | 7376163318 | 05541–241047 |
| 14. | सोनभद्र | डॉ. पी. के. सिंह | 9415450175 | – |
| 15. | बलरामपुर | डॉ. वी. पी. सिंह | 9839420165 | – |
| 16. | अम्बेडकरनगर | डॉ. रामजीत | 9918622745 | – |
| 17. | संतकबीरनगर | डॉ. अरविन्द सिंह | 9415039117 | – |
| 18. | अमेठी | डॉ. रतन कुमार आनन्द | 9838952621 | – |
| 19. | बहराइच (नानपारा) | डॉ. विनायक शाही | 8755011086 | – |
| 20. | मनकापुर–गोण्डा | डॉ. ओम प्रकाश | 9452489954 | – |
| 21. | बरासिन–सुल्तानपुर | डॉ. एस. के. वर्मा | 9450885913 | – |
| 22. | अमहित–जौनपुर | डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी | – | – |
| 23. | गाजीपुर | डॉ. आर. सी. वर्मा | 9411320383 | – |

## विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

| क्र.सं. | कृषि विज्ञान केन्द्र | प्रभारी अधिकारी/ | मोबाइल | दूरभाषा कार्यालय |
|---|---|---|---|---|
| 1. | अमेठी | डॉ. शशांक शेखर सिंह | – | – |
| 2. | गोण्डा | डॉ. ए. पी. राव | 9415720376 | – |
| 3. | देवरिया | श्रीमती सरिता श्रीवास्तव | 9415419712 | – |
| 4. | गाजीपुर | डॉ. ए. पी. राव | 9415720376 | – |

## विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

| क्र.सं. | कृषि अनुसंधान केन्द्र | प्रभारी अधिकारी/ | मोबाइल | दूरभाषा कार्यालय |
|---|---|---|---|---|
| 1. | मसौधा, फैजाबाद | डॉ. डी. के. द्विवेदी | 7706884188 | 05278–254153 |
| 2. | तिसुही, मिर्जापुर | डॉ. एस. के. सिंह | 9450164714 | 05442–284263 |
| 3. | बसुली, महाराजगंज | डॉ. डी. पी. सिंह | 9451430507 | – |
| 4. | घाघरा घाट, बहराइच | डॉ. तेजेन्द्र कुमार | 9415560503 | 0525–235205 |
| 5. | बड़ा बाग, गाजीपुर | डॉ. सी. पी. सिंह | 9628631637 | – |
| 6. | बहराइच | डॉ. गजेन्द्र सिंह | 7379576412 | 0548–223690 |

**प्रो. ए. पी. राव**
**निदेशक प्रसार**

**आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय**
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

# सम्पादकीय

बदलते परिवेश में कृषि को परम्परागत तकनीक से अलग हटकर हमें कम लागत अधिक उत्पादन के साथ–साथ कृषि उत्पादों की पोषक गुणवत्ता को भी मानव स्वास्थ्य के नजरिये से बनाये रखने के लिए चिंता करनी होगी। लगातार प्राकृतिक संसाधनों का सिमटना, बदलता मौसम व भौगोलिक परिस्थितियाँ जिन्हें ध्यान में रखकर निरन्तर नवीनतम तकनीकों व किस्मों का विकास करने पर कृषि वैज्ञानिक गंभीर प्रयास कर रहे हैं। आवश्यकता है विकसित तकनीकों व सुझावों को किसान भाईयों द्वारा अपनाये जाने की।

प्रस्तुत अंक में उपरोक्त के दृष्टिगत तथा किसानों की सकल कृषि आय में बढ़ोत्तरी के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण विषयों पर लेख प्रस्तुत हैं। आशा है हमारे किसान भाई प्रसार कार्यकर्ता इन लेखों का लाभ उठा कर कृषि समूह को लाभ पहुँचाने का प्रयास करेंगे।

**(ए.पी. राव)**

# धान के प्रमुख कीट, रोग एवं उनका नियंत्रण

पंकज कुमार* एवं वी.पी. चौधरी**

विश्व की आधी आबादी का मुख्य भोजन चावल है, इसकी खेती वैश्विक स्तर पर की जाती है। चीन के बाद भारत दुनिया में चावल का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। यह कुल फसली क्षेत्र के लगभग एक चौथाई भाग पर उगाया जाता है और देश की लगभग आधी आबादी को भोजन प्रदान करता है। भारत में इसकी खेती पूर्वी तटीय मैदानों, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, पंजाब और हरियाणा में होती है। महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी डेल्टा में धान की एक वर्ष में दो से तीन फसलें उगाई जाती हैं। देश में किसानों के लिए धान की फसल आय का प्रमुख स्रोत है, इसलिए यह जरूरी है कि किसान धान की फसल में कम लागत लगाकर अधिक उत्पादन तथा आय प्राप्त कर सकें। उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में धान की खेती असिंचित व सिंचित दोनों परिस्थितियों में की जाती है। धान की विभिन्न उन्नतशील प्रजातियाँ जो कि अधिक उपज देती है उनका प्रचलन पूर्वांचल में भी धीरे–धीरे बढ़ रहा है, इसमें मुख्य समस्या कीट तथा रोगों की है, यदि समय रहते इनकी रोकथाम कर ली जाये तो अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

## धान के प्रमुख कीट

पूर्वी उत्तर प्रदेश में धान में लगने वाले प्रमुख कीट निम्नवत् हैं:

### तना छेदक कीट

इस कीट की सूड़ियाँ ही क्षति पहुँचाती हैं। अंडे से निकलने के बाद सूड़ियाँ पौधे की मध्य कलिकाओं की पत्तियों में छेदकर अन्दर घुस जाती हैं तथा अन्दर ही अन्दर तने को खाती हुई गाँठ तक चली हैं, जिससे पौधों में मृत गोभ बन जाती है। पौधों की बढ़वार की अवस्था में प्रकोप होने पर बालियाँ नहीं निकलती हैं, बाली वाली अवस्था में प्रकोप होने पर बालियाँ सूखकर सफेद हो जाती हैं तथा दाने नहीं बनते हैं, इस अवस्था को सफेद बाली वाली अवस्था कहते हैं।

### नियंत्रण

- पौधे रोपाई के समय पौधों के ऊपरी भाग की पत्तियों को थोड़ा सा काटकर रोपाई करें, जिससे अंडे नष्ट हो जाते हैं।
- 5 प्रतिशत मृत गोभ प्रति वर्ग मीटर दिखने पर कारटाप हाइड्रोक्लोराइड 4 प्रतिशत दानेदार दवा 18 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 3–5 सेमी स्थिर पानी में प्रयोग करें अथवा क्लोरपाइरीफास 20 प्रतिशत ई.सी. 1.5 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

### धान का पत्ती लपेटक कीट

इस कीट की मादा धान की पत्तियों के शिराओं के पास समूह में अंडे देती हैं, इन अण्डों से 6–8 दिन में पीले रंग की सूड़ियाँ बाहर निकलती हैं, ये सूड़ियाँ पहले मुलायम पत्तियों को खाती हैं तथा बाद में अपने लार द्वारा रेशमी धागा बनाकर पत्ती को किनारों से मोड़ देती है और अन्दर ही अन्दर खुरच कर खाती हैं। इस कीट का प्रकोप अगस्त–दिसम्बर माह में अधिक होता है। प्रभावित खेत में धान की पत्तियाँ सफेद एवं झुलसी हुई दिखाई देती हैं।

### नियंत्रण

इस कीट से 2 ताजी प्रकोपित पत्ती प्रति पुंज दिखने पर कारटाप हाइड्रोक्लोराराइड 4 प्रतिशत दानेदार दवा 18 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 3–5 सेमी स्थिर पानी में प्रयोग करें अथवा ट्राइजोफास 40 प्रतिशत ई.

*विषय वस्तु विशेषज्ञ, कीट विज्ञान, **विषय वस्तु विशेषज्ञ, पादप रोग, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

सी. 400 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

### हरा फुदका

इस कीट के वयस्क हरे रंग के होते हैं, जिनके ऊपरी पंख के दोनों किनारों पर काले रंग के बिन्दु होते हैं। इस कीट के शिशु तथा वयस्क पत्तियों का रस चूस कर क्षति पहुँचाते हैं जिससे प्रकोपित पत्तियाँ पीली हो जाती हैं, बाद में ये पत्तियाँ कत्थई रंग की होकर नोंक से नीचे की तरफ सूखने लगती हैं।

### नियंत्रण

10 से 20 हरा फुदका प्रति पुंज दिखने पर एसिटामिप्रिड 20 प्रतिशत पाउडर 100 ग्राम प्रति हेक्टेयर या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत 100 मिली प्रति हेक्टेयर या थायोमेथक्जैम 25 प्रतिशत घुलनशील दाने 100 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

### नरई कीट (गाल मिज)

इस कीट की गोभ के अन्दर सूड़ी मुख्य तने को क्षति पहुँचाती है जिससे वह प्याज के तने के आकार का हो जाता है जिसे सिल्वर शूट कहते हैं। इस कीट से ग्रसित पौधो में बाली नहीं बनती है।

### नियंत्रण

- खेत से 5–7 दिन के लिए पानी निकाल देने से इसका प्रकोप कम हो जाता है।
- खेत में 5 प्रतिशत सिल्वर शूट दिखने पर फोरेट 10 प्रतिशत दाने को 10 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से डालना चाहिए अथवा क्लोरपाइरीफास 20 प्रतिशत ई.सी. का 1.25 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

### हिस्पा कीट

इस कीट की गिडार तथा वयस्क दोनों की फसल को हानि पहुँचाते हैं। गिडार पत्तियों में सुरंग बनाकर हरे भाग को खाती है, जिससे पत्तियों पर फफोले जैसी आकृति बन जाती है। वयस्क पत्तियों के ऊपरी सतह पर मध्य शिरा के दोनों तरफ हरे भाग को खुरच कर खाते हैं।

### नियंत्रण

दो प्रकोपित पत्ती या 2 वयस्क प्रति पुंज दिखने पर कारटाप हाइड्रोक्लोरोराइड 4 प्रतिशत दानेदार दवा 18 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 3–5 सेमी स्थिर पानी में प्रयोग करें अथवा क्लोरपाइरीफास 20 प्रतिशत ई.सी. 1.50 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

### प्रमुख रोग

पूर्वी उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से निम्न रोग धान की फसल को हानि पहुँचाते हैं:

### जीवाणु झुलसा रोग

यह रोग जीवाणु जनित है। इस रोग का प्रकोप खेत में एक साथ न शुरू होकर कहीं–कहीं शुरू होता है तथा धीरे–धीरे चारों तरफ फैलता है। इसमें पत्ते ऊपर नोंक से सूखना शुरू होकर किनारों से नीचे की ओर सूखते हैं। गंभीर हालात में फसल पूरी सूखी हुई पुआल की तरह नजर आती है। इस रोग के प्रारंभिक लक्षण पत्तियों पर रोपाई या बुवाई के 20 से 25 दिन बाद दिखाई देते हैं। रोग ग्रसित पौधे कमजोर हो जाते हैं और दाने पूरी तरह नहीं भरते व पैदावार कम हो जाती है। इस रोग के जीवाणु पौधों की जड़ों, बीज, पुआल आदि धान के अवशेष आदि के जरिए अगले मौसम तक चले जाते हैं।

### रोग नियंत्रण

इसके नियंण हेतु 15 ग्राम स्ट्रप्टोमाइसिन सल्फेट 90 प्रतिशत + टेट्रासाइक्लिन हाइड्रोक्लोराइड 10 प्रतिशत को 500 ग्राम कॉपर आक्सीक्लोराइड 50 डब्ल्यू.पी. के साथ मिलाकर प्रति हेक्टेयर 500 से 700 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

## झोंका (ब्लास्ट) रोग

असिंचित धान में इस रोग का प्रकोप बहुत अधिक होता है। इस रोग का प्रकोप होने पर पत्तियों, गाँठों, बालियों पर आँख की आकृति के धब्बे बनते हैं जो बीच में राख के रंग के तथा किनारे गहरे भूरे रंग के होते हैं। तनों की गाँठ पूर्णतया या उसका कुछ भाग काला पड़ जाता है और वह सिकुड़ जाता है, जिससे पौधा गिर जाता है। इस रोग का प्रकोप जुलाई से सितम्बर माह में अधिक होता है।

## रोग निंयत्रण

इस रोग की रोकथाम के लिए बुवाई से पूर्व बीज को ट्राईसाइक्लेजोल 2.0 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

रोग के लक्षण दिखाई देने पर 10–12 दिन के अन्तराल पर या बाली निकलते समय दो बार आवश्यकतानुसार कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील धूल की 500 ग्राम मात्रा को लगभग 500–750 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छ़िकाव करना चाहिए।

## भूरा धब्बा रोग

इस रोग में पत्तियों पर तथा पर्णच्छ पर छोटे–छोटे कत्थई रंग के गोल अथवा अण्डाकार धब्बे बन जाते हैं। उग्र संक्रमण होने पर ये धब्बे आपस में मिल कर पत्तियों को सुखा देते हैं और बालियाँ पूर्ण रूप से बाहर नहीं निकल पाती हैं। इस रोग का प्रकोप कम उर्वरता वाले क्षेत्रों में अधिक दिखाई देता है।

## रोग नियंत्रण

- संतुलित मात्रा में नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश का प्रयोग करना चाहिए।
- बीज को थीरम 75 प्रतिशत डब्ल्यू.एस. की 2.5 ग्राम मात्रा का प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करके बुवाई करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर एडीफेनफास 50 ई. सी. अथवा मैंकोजेब 75 डब्ल्यू.पी. 2.0 किग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 500–700 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

## पर्णच्छद अंगमारी (शीथ ब्लाइट)

इस रोग के लक्षण मुख्यतः पत्तियों एवं पर्णच्छदों पर दिखाई देते हैं। पर्णच्छद पर अनियमित आकार के धब्बे बनते हैं, जिनका किनारा गहरा भूरा तथा मध्य भाग हल्के रंग का होता है।

## रोग नियंत्रण

- पर्णच्छद अंगमारी के नियंत्रण हेतु बीज को कार्बेन्डाजिम 50 घुलनशील धूल की 2.0 ग्राम मात्रा का प्रति किग्रा बीज की दर से शोधित करके बुवाई करना चाहिए।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर प्रोपीकोनाजोल 25 ई.सी. की 1.0 लीटर मात्रा को 500–700 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

## मिथ्या कंडुआ रोग

इस रोग के लक्षण पौधों में बालियों के निकलने के बाद ही स्पष्ट होते हैं। रोग ग्रस्त दाने पीले से लेकर संतरे के रंग के हो जाते हैं जो बाद में काले रंग के गोलों में बदल जाते हैं। इस रोग का प्रकोप अगस्त–सितम्बर माह में अधिक दिखाई देता है।

## रोग निंयत्रण

- मिथ्या कंडुआ रोग के नियंत्रण हेतु कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील धूल की 2.0 ग्राम मात्रा का प्रति किग्रा बीज की दर से शोधित करके बुवाई करना चाहिए।
- जिन क्षेत्रों में यह रोग अकसर लगता है उन क्षेत्रों में पुष्पन के दौरान कवकनाशी रसायन जैसे कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील धूल की 500 ग्राम मात्रा को 500–750 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।●

# लेमन ग्रास की उन्नत खेती

डॉ. राम सुमन मिश्रा* एवं डॉ. ओ.पी. राव**

इसे नींबू घास भी कहते हैं। इसका वानस्पतिक नाम सिम्वापोगान फ्लैक्सुयोसस है। बंजर भूमि में कृषि किसानों के लिए चिंता का विषय है वहीं कुछ ऐसी फसलें है जो कि कम सिंचाई में तथा बंजर भूमि में भरपूर आमदनी देती हैं। वैसी ही फसल नींबू घास (लेमन घास) है जो साल भर अच्छी आमदनी देने वाली फसल है। यह घास प्रायः केरल, कर्नाटक, तमिलानाडु, बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, असम एवं राजस्थान में उगाई जाती है। भारत में इसकी खेती 30000 हेक्टेयर से अधिक में की जाती है। यह घास सूखा पड़ने पर भी अच्छी पैदावार देती है। लेमन ग्रास की तीन किस्में होती हैं जिसमें से एक नींबू की खुशबू देती है। एक गुलाब और एक अन्य प्रकार की खुशबू देती है।

## उपयोगिता

लेमन ग्रास में ऐंटी ऑक्सीडेंट गुणों की वजह से इसे चाय की तरह पीना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है। इसके अलावा इसका प्रयोग परफ्यूम, साबुन, क्रीम और लेमन ग्रास तेल निकालने में होता है। एक एकड़ लेमन ग्रास की पत्ती से साल भर में 80–90 किग्रा तेल प्राप्त होता है। शुष्क क्षेत्रों में सिट्रल की मात्रा आर्द्र क्षेत्रों की तलना में कम होती है।

## जलवायु

इसकी खेती के लिए गर्म, आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है। जहाँ वर्ष भर में 200 से 250 सेमी वर्षा होती है। लेमन ग्रास का पौध साल भर में 3–4 बार उपज देता है। कटाई के बाद सिंचाई करने से इसके उत्पाद में वृद्धि हो जाती है। लेमन ग्रास की फसल पर पाले का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

## नर्सरी तैयार करना

लेमन ग्रास की खेती के लिए सर्वप्रथम अप्रैल–मई माह में इसकी नर्सरी तैयार की जाती है, जिसके लिए हमें प्रति हेक्टेयर 2.0 किग्रा बीज की आवश्यकता होती है। नर्सरी तैयार होने पर जुलाई एवं अगस्त में पौध की रोपाई खेत में करते हैं। बीज का अंकुरण 5–6 दिन में हो जाता है।

## भूमि

नींबू घास की खेती ऐसी किसी भी भूमि में की जा सकती है जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो। इसे हल्की लेटराइट लाल मिट्टी में उगाया जा सकता है। इसकी खेती के लिए सामान्य पीएचमान वाली भूमि उपयुक्त होती है।

## खेत की तैयारी

पौध रोपाई से पूर्व खेत में मिट्टी पलटने वाले हल से क्रास जुताई करना चाहिए जिसमें 5 प्रतिशत एण्डोसल्फान 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बुरकाव करना चाहिए, ताकि फसल की भूमिगत कीटों से सुरक्षा हो सके।

## उन्नत किस्में

1. प्रगति–10, 2. आर.आर.–16, 3. प्रमाण सी, 4. के. पी.–25, 5. कृष्णा–ओडी–16, 6. सुगंधी–ओडी–19, 7. कावेरी ओडी–440, 8. सी.पी.के.–25।

## पौध रोपण

इस विधि से तैयार पौध की रोपाई जुलाई–अगस्त में की जाती है। पंक्तियों एवं पौध की दूरी 70 गुणा 60 सेमी रखी जाती है। भारी वर्षा वाले क्षेत्र में पौध की रोपाई मेड़ों पर करनी चाहिए।

*सहायक प्राध्यापक, औषधि एवं सगंध पौध विभाग, **अधिष्ठाता, उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

## जड़ों के टुकड़ों (सिल्प) द्वारा

नींबू घास के पौधे समूह को पुंज की संज्ञा दी जाती है। एक पुंज में 100–150 सिल्प होते हैं। इन सिल्पों को अलग–अलग करके रोपाई की जाती है। इस विधि का प्रयोग मुख्य रूप से उत्तरी भारत में किया जाता है। नीचे के मात्र 15 सेमी भाग छोड़कर पूरे भाग को हटा दिया जाता है, जिससे नई जड़ें निकल आयें। वैसे सिल्प को फरवरी–मार्च माह में लगाना चाहिए। इसकी रोपाई 60 गुणा 60 सेमी पर की जाती है।

## सिंचाई एवं जल निकास

सिल्प रोपने के बाद सिंचाई कर देनी चाहिए। इसके उपरान्त जलवायु एवं भूमि के अनुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। आमतौर पर गर्मी में 10 दिन के अन्तराल पर तथा सर्दियों में एक माह के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। खेत में पानी का जमाव नहीं होना चाहिए, अन्यथा फसल पीली पड़ने लगती है।

## खाद एवं उर्वरक

यह बहुवर्षीय घास है इसलिए इसमें उचित मात्रा में खाद एवं उर्वरक देना चाहिए। इसमें 10 टन गोबर की खाद, नाइट्रोजन 150 किग्रा, फास्फोरस 50 किग्रा तथा पोटाश 50 किग्रा का प्रयोग भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए करना चाहिए। आमतौर पर नत्रजन की मात्रा प्रत्येक कटाई के बाद देनी चाहिए।

## खरपतवार नियंत्रण

इस घास में बहुत सारे खरपतवार उग जाते हैं, जो फसल की वृद्धि को प्रभावित करते हैं। इसके लिए फसल में 2–3 बार निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है। पहली निराई–गुड़ाई 25–30 दिन बाद करना चाहिएए। अधिक खरतपवार वाले खेत में 1.0 किग्रा आक्सीफ्ल्यूरोफेन को 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर अंकुरण से पूर्व छिड़काव करना चाहिए।

## रोग नियंत्रण

इस फसल में कोई विशेष रोग नहीं लगता है, परन्तु कभी–कभी इन्ड्रोपोजानिस नामक कवक का प्रकोप हो जाता है, जिसके कारण पत्तियों पर धब्बों का निर्माण हो जाता है। इसकी रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत जिनेव का छिड़काव करना चाहिए।

## कीट नियंत्रण

दीमक का प्रकोप प्रायः देखा गया है। इसके नियंत्रण के लिए 2.0 लीटर क्लोरोपाइरीफास 20 ई.सी. को 800 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

## सफेद मक्खी

यह कीट फसल को काफी नुकसान पहुँचाता है। यह वायरस रोग को भी फैलाता है। इसकी रोकथाम के लिए 1.0 लीटर डाईमेथोएट या 1.5 लीटर मोनोक्रोटोफास को 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

## फसल की कटाई

इस घास की प्रथम कटाई लगभग 100 दिन बाद करनी चाहिए। इसके बाद प्रत्येक 60 से 70 दिन बाद कटाई करते रहना चाहिए। फसल की कटाई जमीन से 10–15 सेमी ऊपर से करनी चाहिए। एक बार रोपित फसल 6–8 साल तक बनी रह सकती है, परन्तु 5 वर्ष तक फसल लेना अधिक लाभदायक होता है। इसके बाद तेल की मात्रा कम हो जाती है।

## पैदावार

नींबू घास की उपज कई बातों पर निर्भर करती है जैसे जलवायु, भूमि की उर्वरा शक्ति, फसल की प्रजाति तथा फसल की देखभाल। उपरोक्त सभी चीजें उपयुक्त हों तो प्रत्येक वर्ष औसत तेल का उत्पादन 100–120 लीटर प्रति हेक्टेयर मिल जाता है। इस तरह चार वर्षों तक तेल की मात्रा बढ़ती रहती है, लेकिन 5 वर्ष के बाद तेल की मात्रा में कमी होने लगती है। ●

# गन्ने की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग, कीट एवं उनका प्रबंधन

अंकज तिवारी*, डॉ. विनोद सिंह**, डॉ. डी.के. द्विवेदी***, शिवम दुबे*

गन्ना भारत की महत्वपूर्ण नगदी फसल है, बेहतर मुनाफा देने वाली इस फसल को नगदी खेती के रूप में भी जाना जाता है। इस फसल में कई प्रकार के रोग एवं कीट लगते हैं, इन सभी को नियंत्रित करना जरूरी रहता है, जिससे उत्पादन पर किसी भी तरह का प्रभाव न पड़ सके। अतः अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए उन्नत किस्म के बीज, खाद एवं सिंचाई के साथ–साथ हानिकारक रोगों एवं कीट का उचित समय पर रोकथाम या नियंत्रण भी आवश्यक है।

## गन्ने की फसल के प्रमुख रोग

### लाल साइन

यह गन्ने की फसल का मुख्य रोग है। इस रोग की मुख्य पहचान पत्तों का सूखना, गन्ने के पौधों में दुर्गन्ध आना एवं तने को बीच से चीरने पर लम्बी लाल धारियाँ दिखाई देना है।

### रोकथाम

इस रोग से फसल से बचाव के लिए गन्ने के बीज का चयन सावधानीपूर्वक करना तथा रोपाई के समय टुकड़ों को एग्रोसान जी.एन. या थाइरम या कैप्टान या बाविस्टिन नामक दवा से (कोई भी एक) 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर, उसमें 5 मिनट तक उपचारित करके बुवाई करें। रोग प्रतिरोधी किस्म का प्रयोग करें।

### उकठा रोग

यह कवक से फैलने वाला रोग है। इस रोग के प्रभाव से पौधे मुरझाकर सूखने लगते हैं तथा तना हल्का एवं अन्दर से खोखला हो जाता है।

### रोकथाम

रोगी पौधों को ध्यान से उखाड़ कर देखने पर जड़ों में काले धब्बे दिखते हैं जिनके कारण जड़ें उखाड़ने पर ऊपरी भूरी परत मृदा में ही रह जाती है तथा सफेद भाग तने के साथ आ जाता है। इसकी रोकथाम के लिए लाल सड़न रोग की तरह रोपाई से पूर्व टुकड़ों को उपचारित करना उचित रहता है। यदि खड़ी फसल में उकठा रोग का प्रभाव दिखाई देता है तो बाविस्टिन या डाइथेन जेड–78 या डाइथेन एम–45 के 0.2 प्रतिशत घोल का 15 दिन के अन्तराल में कम से कम तीन छिड़काव करें।

### कंड रोग

कंड रोग भी गन्ने की फसल का प्रमुख रोग है यह रोग बीजों के माध्यम से फैलता है। इसमें तने से सूखी, पतली, लम्बी, काली भूरी संरचना वाली डंठल निकलती है, इस डंठल की झिल्ली टूटने पर काला चारकोल के समान पाउडर निकलता है।

### रोकथाम

इस रोग से फसल का बचाव करने के लिए फसल की रोपार्ठ से पूर्व बीजोपचार करना तथा रोग प्रतिरोगधी किस्मों का प्रयोग करना ही उचित उपचार है।

## गन्ने में लगने वाले कीट एवं नियंत्रण

### दीमक

**क्षति** : दीमक का प्रकोप गन्ने की बुवाई के साथ–साथ शुरू हो जाता है। बुवाई के कुछ दिन बाद बाहरी पत्तियाँ पहले सूखने लगती हैं।

### नियंत्रण

बुवाई के समय नालियों के सेट पर गामा बी.एच.सी. का 1 किग्रा सक्रिय भाग प्रति हेक्टेयर की दर से अथवा डायमिथोएट 30 ई.सी. 1155 एमएल प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

### गन्ने का पायरिल्ला

**क्षतिः** इसके प्रकोप से पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं तथा उन पर कवक उग आते हैं।

(शेष पृष्ठ 15 पर)

*शोधछात्र, **सहप्राध्यापक, ***प्राध्यापक,, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

# मशरूम उत्पादन की उन्नत तकनीक

अंकित गौतम* एवं डॉ. सुबोध कुमार पाण्डे**

मशरूम एक पूर्ण स्वास्थ्यवर्धक, शाकाहारी, पौष्टिक एवं औषधीय गुणों से भरपूर खाने योग्य फफूँदी है। मशरूम में वसा, शर्करा कम मात्रा में पाया जाता है, जिसके कारण मशरूम को सेवन हृदय, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, अति अम्लीयता, कैंसर तथा कब्ज आदि रोगियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

मशरूम घर के अन्दर की जाने वाली (इन्डोर) खेती है, जिसके लिए कृषि भूमि की आवश्यकता नहीं होती है। फसलों की तरह मशरूम की भी भिन्न–भिन्न ऋतुओं में मौसम की अनुकूलता के अनुसार विभिन्न प्रकार की मशरूम की खेती की जा सकती है। लेकिन मशरूम एक गैर परम्परागत फसल होने की वजह से इसे फसलों की तरह क्रम से उगाना अभी तक प्रचलन में नहीं आ पाया है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसान अधिकतम केवल शरद ऋतु में बटन मशरूम की खेती करते हैं तथा अन्य ऋतुओं में मशरूम उत्पादन व्यवसाय बन्द कर देते हैं। जलवायु के आधार पर उत्तर प्रदेश का शीत ऋतु, बसंत ऋतु, ग्रीष्म ऋतु तथा वर्षा ऋतु में वर्गीकरण किया गया है। ऋतुओं के अनुसार वातावरण में मौजूद तापमान एवं नमी को ध्यान में रखकर अलग–अलग समय पर भिन्न–भिन्न प्रकार की मशरूम वृद्धि हेतु तापमान एवं नमी की आवश्यकता अलग–अलग है।

## वार्षिक फसल चक्र

विभिन्न प्रकार की मशरूम प्रजातियों की वानस्पतिक वृद्धि (बीज फैलाव) व फलनकाय (फलन) अवस्था के लिए अनुकूल तापमान अलग–अलग होता है। मशरूम को कृषि फसलों की भाँति फेर बदल करके वर्ष भर उगाया जा सकता है।

वर्ष भर मशरूम उत्पादन के लिए निम्नानुसार फसल चक्र को अपनाना चाहिएः

## बटन मशरूम की खेती शरद ऋतु में अक्टूबर से फरवरी तक

बटन मशरूम को कृत्रिम ढंग से तैयार की गयी खाद (कम्पोस्ट) पर उगाया जाता है। कम्पोस्ट बनाने हेतु गेहूँ का भूसा/कटा हुआ पुआल, यूरिया, कैल्शियम, अमोनियम नाइट्रेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश, सुपर फास्फेट, गेहूँ का चोकर जिप्सम तथा कीटनाशी एवं फफूँदनाशी की आवश्यकता होती है। लम्बी विधि से कम्पोस्ट बनाने के कार्य में एक माह का समय लगता है। अतः कम्पोस्ट बनाने का कार्य अक्टूबर माह से प्रारम्भ कर देना चाहिए। इसके बाद नवम्बर में बिजाई व केसिंग क्रिया करने के उपरान्त दिसम्बर से फरवरी माह के मध्य तक मशरूम की प्राप्ति होती है। एक क्विंटल तैयार कम्पोस्ट से लगभग 15–18 किग्रा मशरूम की उपज प्राप्त हो जाती है। एक किग्रा मशरूम उत्पादन में 60–75 रू का खर्च आता है, जो बाजार में 100–125 रू प्रति किग्रा की दर से बिकता है।

## ढिंगरी मशरूम की विभिन्न प्रजातियों की खेती सितम्बर से मार्च तक

ढिंगरी मशरूम को किसी भी प्रकार के कृषि अवशेषों पर आसानी से उगाया जा सकता है तथा इसका फसल चक्र 45–60 दिन का होता है। एक किग्रा सूखे भूसे से लगभग एक किग्रा ताजा मशरूम की पैदावार मिलती है, जिसका लागत मूल्य 45 रू आता है तथा बाजार में 60–80 रू प्रति किग्रा की दर से बिकता है।

## दूधिया मशरूम को फरवरी से अप्रैल व जुलाई से सितम्बर तक

यह मशरूम ढिंगरी मशरूम की तरह अच्छी पैदावार देता है। एक किग्रा सूखे भूसे/पुआल से एक किग्रा ताजा मशरूम प्राप्त हो जाता है, जिसकी उत्पादन

*एम.एस.सी. उद्यान विज्ञान, डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ, **सहायक प्राध्यापक, पादप रोग विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

लगात प्रति किग्रा 50–65 रू आती है तथा बाजार में यह 100–120 रू प्रति किग्रा के भाव से बिकता है।

### पुआल मशरूम को जुलाई से सितम्बर तक

इसके लिए धान के पुआल की आवश्यकता होती है। जो एक वर्ष से अधिक पुराना व भीगा हआ नहीं होना चाहिए। धान के पुआल को 0.5 किग्रा से एक किग्रा के बंडलों में बांधा जाता है। ये बंडल एक मी लम्बे तथा 15–20 सेमी व्यास के होने चाहिए। इन बंडलों को पानी में भिगोकर उपचारित करने के उपरान्त भूमि पर बाँस के टुकड़ों द्वारा निर्मित फ्रेम पर या छिद्रयुक्त आयरन रैक्स पर इस मशरूम की शैय्या बनाते हैं। इस प्रकार से बनाई गयी प्रति शैय्या हेतु 250 ग्राम स्पान व 250 ग्राम बेसन की आवश्यकता होती है। तथा प्रत्येक शैय्या से 3–4 किग्रा मशरूम प्राप्त होता है। इस पर लागत 40–45 रू प्रति किग्रा आती है। जो बाजार में 80–100 रू प्रति किग्रा की दर से बिकता है।

विभिन्न खाद्य मशरूम को ऋतुओं के आधार पर मशरूम की खेती करने से किसान भाई निम्न लाभ अर्जित कर सकते हैं

**1. वर्ष भर आयः** कृषक उसी उद्यम की ओर आकर्षित होते हैं जिनसे उन्हें वर्ष भर आय मिलती है। एक विशिष्ट ऋतु में एक विशिष्ट मशरूम की खेत करने के बाद वर्ष की अन्य ऋतुओं में मशरूम उत्पादन का कार्य बन्द कर देते हैं, इसलिए मशरूम की खेती किसानों को आकर्षित नहीं कर पाती है। अतः विभिन्न मशरूमों की वर्ष भर ऋतु के आधार पर लगातार खेती करने से निश्चित ही मशरूम उत्पादकों की आर्थिक आय में बढ़ोत्तरी होगी तथा मशरूम की खेती ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का महत्वपूर्ण साधन हो सकती है।

### 2. वर्ष भर रोजगार के अवसर

वर्ष भर मशरूम की खेती से कृषक को वर्ष भर रोजगार की प्राप्ति होने से जीवन यापन अच्छा होने के साथ आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी।

### 3. वर्ष भर फार्म संसाधनों का उपयोग

वर्ष भर मशरूम की खेती को अपनाने से संसाधन जैसे कच्चा पदार्थ यंत्र तथा मजदूर को लगातार उपयोग में रखा जा सकता है तथा यदि एक ही विशिष्ट मशरूम की खेती विशिष्ट ऋतु में करते हैं, तो यही संसाधन अन्य ऋतुओं में अनुपयोगी हो जाता है।

### 4. पारिवारिक सदस्यों को वर्ष भर पौष्टिक भोजन की प्राप्ति

मशरूम प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज लवणों से भरपूर स्वास्थ्यवर्धक स्वादिष्ट शाकाहारी सब्जी है। पोषक तत्वों के अतिरिक्त मशरूम में औषधीय गुण मौजूद होने की वजह से यह कुपोषण की समस्या को दूर करने के साथ कैंसर, हृदय, मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि रोगियों के लिए मशरूम का सेवन औषधि का कार्य करता है।●

**सारिणी–1**
**प्रमुख खाद्य मशरूम को उगाने के लिये आवश्यक अनुकूल तापमान**

| मशरूम के वैज्ञानिक नाम | प्रचलित नाम | अनुकूल तापमान डिग्री सेन्टी | |
|---|---|---|---|
| | | बीज फैलाव हेतु | फलन हेतु |
| एगेरिकस वाईस्पोरस | श्वेत बटन मशरूम | 22–25 | 14–18 |
| एगेरिकस बाइटॉरकिस | ग्रीष्म कालीन श्वेत बटन मशरूम | 28–30 | 25 |
| प्लूरोटस इरिन्जाइ | काबुल ढिंगरी | 18–22 | 14–18 |
| प्लूरोटस फ्लेविलेट्स | ढिंगरी मशरूम | 25–30 | 22–26 |
| प्लूरोटस फ्लोरिडा | ढिंगरी मशरूम | 25–30 | 18–22 |
| प्लूरोटस सजोरकाजू | ढिंगरी मशरूम | 25–32 | 22–26 |
| कैलोसाइबी इंडिका | दूधिया मशरूम | 25–30 | 30–35 |
| वाल्वेरिल्ला वालवेसिया | पुआल मशरूम | 32–35 | 28–32 |
| ऑरिकुलेरिया प्रजाति | ब्लैक इयर मशरूम | 20–35 | 12–20 |
| लेन्टीनुला इडोड्स | शिटाके मशरूम | 22–27 | 15–20 |

# फास्फोरस घुलनकारी जीवाणु आधारित जैव उर्वरक का प्रयोग कर फास्फेटिक उर्वरक की बचत करें

आदेश कुमार*, शम्भू प्रसाद* एवं पंकज कुमार**

किसान भाई यह समझें कि जो फास्फेटिक उर्वरक खेत में डालते हैं, उसका केवल 25 प्रतिशत ही फसलों को पहली बार में मिलता है, बाकी भूमि में स्थिर/भण्डारित हो जाता है। इस फास्फेटिक तत्व को भूमि को उपलब्ध कराने के लिए किसान भाई फास्फोरस घुलनकारी जीवाणु (पी.एस.बी) (फास्फेटिका) बायोफर्टिलाइजर का प्रयोग करें। इससे भूमि में स्थिर/भण्डारित फास्फोरस घुलनशील अवस्था में आकर फसलों को प्राप्त होगा। इससे डी.ए.पी. कम लगेगी और किसान भाइयों का धन भी बचेगा। पी.एस.बी. (फास्फेटिका) जीवाणु खाद जीवाणुओं का एम नम चूर्ण रूप में उत्पाद है। नत्रजन के बाद दूसरा महत्वपूर्ण पोषक तत्व फास्फोरस है जिसे पौधे सर्वाधिक उपयोग में लाते हैं। फास्फेटिका उर्वरकों का लगभग 25 प्रतिशत भाग पौधे अपने उपयोग में ला पाते हैं, शेष अघुलनशील अवस्था में ही जमीन में पड़ा रह जाता है। जिसे पौधे स्वयं घुलनशील नहीं बना पाते। जब हम पी.एस.बी. का प्रयोग करते हैं तो मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फोरस को जीवाणुओं द्वारा घुलनशील अवस्था में बदल दिया जाता है तथा इसका प्रयोग सभी फसलों में किया जा सकता है। साधारणतया यह आवश्यक नहीं है कि मृदा में भी उपस्थित जीवाणु सक्षम एवं असरकारक हों, अतः कल्चर के माध्यम से किसानों को असरकारक जीवित पदार्थ या जीवाणु उपलब्ध कराये जाते हैं।

## किन फसलों में प्रयोग किया जा सकता है?

इसका प्रयोग सभी प्रकार की फसलों में फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाने हेतु किया जा सकता है।

## पी.एस.बी. जैव उर्वरक के लाभ

1. फास्फेटिका जीवाणु खाद के प्रयोग से फसलों की 10–25 प्रतिशत तक पैदावार में वृद्धि होती है।
2. इसके प्रयोग करने से फास्फोरस की 30–50 प्रतिशत की बचत की जा सकती है।
3. जड़ों का विकास अधिक होता है, जिससे पौधा स्वस्थ बना रहता है।

## प्रयोग करने की विधि

मात्र 200 ग्राम पी.एस.बी. कल्चर से 10 किग्रा बीज उपचारित कर सकते हैं। एक पैकेट खोलें तथा 200 ग्राम पी.एस.बी. कल्चर 100 ग्राम गुड़ या चीनी एवं 500 मिली पानी में डालकर अच्छी प्रकार घोल बना कर करीब आधा घण्टा तक उबालें तथा ठण्डा होने दें। बीजों को किसी साफ सतह पर इकट्ठा कर जैव उर्वरक के घोल को बीजों पर धीरे–धीरे डालें और हाथों से मिलायें जब तक सभी बीजों पर जैव उर्वरक की समान परत न बन जाये। अब उपचारित बीजों को किसी छायादार स्थान पर फैलाकर 10–15 मिनट तक सुखा लें और तुरंत बुवाई कर दें।

## सावधानियाँ

1. जैव उर्वरक को धूप व गर्मी से दूर किसी सूखी एवं ठण्डी जगह में रखें।
2. जैव उर्वरक उपचारित बीजों को किसी भी रसायन या रसायनिक खाद के साथ न मिलायें।
3. यदि बीजों पर फफूँदनाशी का प्रयोग करना हो तो बीजों को पहले फफूँदनाशी से उपचारित करें तथा फिर जैव उर्वरक से उपचारित करें।
4. जैव उर्वरक का प्रयोग पैकेट पर लिखी अन्तिम तिथि से पहले ही कर लेना चाहिए।
5. जैव उर्वरक किसी प्रमाणित संस्था से ही क्रय करें अन्यथा उसके जीवाणु क्रियाशील नहीं होते हैं।●

*बायोटेक्नोलॉजी विभाग, **प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

# फल वृक्ष आधारित बहुस्तरीय फसल प्रणाली

रवि प्रताप सिंह*, अनिल प्रताप राव** एवं अरूण कुमार सिंह***

पूर्वी भारत के जन–जातीय बहुल वर्षा आश्रित पठारी क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि प्रायः धान अथवा फलोद्यान, अनाजों की खेती हेतु प्रयोग में लाई जाती है। इन फसलों की उत्पादन क्षमता कम होने के साथ–साथ वर्ष की शेष अवधि में भूमि प्रायः खाली रहती है। झारखण्ड के परिप्रेक्ष्य में अगर देखा जाए तो यहाँ की खाद्यान्न आवश्यकता (लगभग 45 लाख टन) की आधी मात्रा का ही राज्य में उत्पादन होता है तथा शेष अन्य राज्यों से आयात किया जाता है। राज्य में बढ़ती जनसंख्या के दबाव एवं उसके अनुरूप रोजगार सृजन न हो पाने के कारण वन संपदा का ह्रास भी तीव्र गति से हो रहा है। सरकार द्वारा इन क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर जलछाजन कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, जिनके अंतर्गत वर्षाजल को सिंचित कर कृषि में इसके उपयोग पर बल दिया जा रहा है। जलछाजन क्षेत्रों में बागवानी की अपार संभावनाओं एवं इन फसलों की उत्पादन क्षमता को दृष्टिगत रखते हुए यहाँ कार्यरत शोध संस्थानों ने फल आधारित कृषि प्रणाली का विकास करने का प्रयास किया है। इसके द्वारा पूर्ण विकसित एवं नए बागों के लिए अंतरासस्य प्रणालियाँ विकसित कर प्रति इकाई क्षेत्रफल उत्पादकता स्तर में सुधार पर बल दिया गया है, जिसके फलस्वरूप मानकीकृत फल आधारित बहुस्तरीय फसल प्रणालियाँ विकसित की गई हैं।

## बहुस्तरीय फसल प्रणाली

बहुस्तरीय फसल प्रणाली का मुख्य आधार प्राकृतिक संसाधनों का सघन उपयोग कर उत्पादकता बढ़ाना है, जिसमें बाग की प्रारम्भिक अवस्था में अपेक्षाकृत लम्बी विकास अवधि एवं बड़े आकार वाले फल पौधों जैस आम, लीची, कटहल, आँवला आदि के बीच की उपलब्ध भूमि में कम बढ़ने एवं अल्प विकास अवधि वाले पूरक फलों जैसे अमरूद, शरीफा, पपीता, नींबू वर्गीय फल आदि की रोपाई की जाती है। फल पौधों की रोपाई के उपरांत उपलब्ध शेष स्थान में वर्षा आधारित अथवा सिंचित मौसमी फसलें जैसे सब्जियाँ, पुष्प, दलहन, तिलहन अथवा धान्य फसलें उगाई जा सकती हैं। आधार फल पौधों का आकार बढ़ने पर पूरक फल पौधों को हटा दिया जाता है जिससे आधार वृक्षों का समुचित विकास होता रहता है। इस अवस्था में पेड़ों के बीच की खाली जमीन में अपेक्षाकृत कम प्रकाश में उगाई जा सकने वाली फसलों जैसे– हल्दी, अदरक इत्यादि की खेती की जा सकती है। इस प्रकार बाग की प्रारम्भिक अवस्था में ही सतत् आय प्राप्त की जा सकती है एवं भू–क्षरण की समस्या का काफी सीमा तक निदान किया जा सकता है। भूमि की उर्वरता एवं पर्यावरण सुरक्षा जैसी महती आवश्यकताओं के सुधार में भी इसके द्वारा योगदान संभव है।

लीची और आम के बाग में पौधों तथा लाईनों के बीच 10 मी. की दूरी रखने की आवश्यकता होती है। प्रारम्भिक अवस्था में इनके बीच में अमरूद के पौधों की रोपाई की जा सकती है। इस प्रकार एक हेक्टेयर भूमि में 100 लीची अथवा आम तथा 300 अमरूद के पौधों की रोपाई की जा सकती है। शेष लगभग 70–80 प्रतिशत भूमि को अंतरासस्य हेतु प्रयोग किया जा सकता है।

लीची एवं अमरूद के नये बाग में वर्षा आश्रित बोदी के अंतरासस्य से 25–30 क्विं प्रति हेक्टेयर की औसत पैदावार ली जा सकती है। प्रायोगिक प्रखंड में उपज एवं आय–व्यय का ब्यौरा जिससे सर्वाधिक रू. 10,990.00 प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुआ है निम्न तालिका में दिया गया है। आम+अमरूद के नये बाग में वर्षाश्रित बोदी को अंतरासस्य पैदावार एवं शुद्ध लाभ की दृष्टि से सबसे अच्छा माना गया है। इससे अधिकतम औसत पैदावार (36.30 क्विं प्रति हेक्टेयर) तथा शुद्ध लाभ (रू. 14,610.00 प्रति हेक्टेयर) तक प्राप्त किया जा सकता है।

## बहुस्तरीय फसल प्रणाली की तकनीक

- आधार एवं पूरक फलों की उन्नत किस्में
- आम, लीची एवं अमरूद की उन्नत किस्में तथा परिपक्वता समय का विवरण निम्न तालिका में

*शोधछात्र उद्यान विभाग, **निदेशक प्रसार, ***सहप्रध्यापक, उद्यान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

दिया गया है।

- आधार एवं पूरक फलों की उन्नत किस्में एवं परिपक्वता समय

| फसल | परिपक्वता का समय | उन्नत किस्में |
|---|---|---|
| **आम** | | |
| अगेती | 20–30 मई | बाम्बे ग्रीन, रानी पसंद, जर्दा, जरदालू |
| मध्य अगेती | 30 मई–10 जून | हिमसागर, गोपाल भोग, किशन भोग |
| मध्य | 10–30 जून | लंगड़ा, दशहरी, प्रभाशंकर |
| मध्य पछेती | 20 जून–5 जुलाई | महमूद बहार, मल्लिका |
| पिछेती | 25 जून– 20 जुलाई | आम्रपाली, सीपिया, चौसा, फजली |
| **लीची** | | |
| अगेती | 10–22 मई | शाही, अझौली, ग्रीम |
| मध्यम | 20–25 मई | रोज सेंटेड, अर्ली बेदाना |
| मध्य अगेती | 25 मई– 10 जून | स्वर्ण रूपा, चाइना, लेट बेदाना |
| पिछेती | 5–15 जून | पूर्वी, कस्वा |
| अमरूद | – | सरदार, इलाहाबाद सफेद |

आम के लिए अप्रैल–मई में 90X90X90 सेमी एवं अमरूद के लिए 60X60X60 सेमी आकार के गड्ढे खोदकर छोड़ देने चाहिए। गड्ढों को 15–20 दिन खुला छोड़ने के बाद 2–3 टोकरी गोबर की खाद (25–30 किग्रा), 2 किग्रा करंज/नीम की खली, 1 किग्रा सिंगल सुपर फास्फेट एवं 15–20 ग्राम फ्यूराडॉन–3 जी प्रति गड्ढे की दर से सतह की ऊपरी मिट्टी में मिला कर भर देना चाहिए। एक दो बारिश होने के साथ जब गड्ढे की मिट्टी दब जाए तब पौधों की रोपाई की जा सकती है। पौध रोपाई के बाद पौधों की समुचित देख–रेख करने के साथ–साथ अंतसस्य की फसल लेने से अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। बहुस्तरीय फसल प्रणली से झारखण्ड ही नहीं बल्कि कोरापुट (उड़ीसा) अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़ एवं जबलपुर (मध्य प्रदेश) में भी उत्साहवर्धक लाभ मिला है जहाँ पर लीची, अमरूद तथा आम, अमरूद के नए बगीचों में बोदी, उरद तथा अरहर की वर्षाश्रित खेती सर्वश्रेष्ठ पायी गई है, जबकि पूर्ण विकसित आम के बगीचों में हल्दी तथा अदरक की वर्षाश्रित खेती ज्यादा लाभप्रद रही।

अतः झारखण्ड राज्य में आम, लीची तथा कटहल के नये बगीचों एवं पुराने बागों की उपलब्ध लगभग (6.277 हेक्टेयर) भूमि को बहुस्तरीय फसल प्रणाली के अंतर्गत लाया जाए तो इससे अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

## अंतसस्य से प्राप्त पैदावार एवं शुद्ध लाभ

- लीची, अमरूद एवं आम, अमरूद के नये बागों में वर्षाश्रित
- अंतसस्य से प्राप्त पैदावार एवं शुद्ध लाभ (3 वर्ष का औसत)

| अंतर फसल | उपज क्विं/हे | शुद्ध लाभ | लाभ लागत अनुपात (रू) |
|---|---|---|---|
| लीची+अमरूद | | | |
| बोदी | 29.02 | 10,990 | 3:80:1 |
| बैंगन | 20.58 | 6,348 | 1:69:1 |
| आम+अमरूद | | | |
| बोदी | 36.30 | 14,610 | 4:67:1 |
| बैंगन | 25.60 | 8,992 | 2:48:1 |

पूरक (अमरूद) पौधों से दूसरे/तीसरे वर्ष में फल मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं, जिनके योगदान से प्रति इकाई क्षेत्रफल से अधिक आमदी मिल सकती है। जब पौधे पूर्ण विकसित हो जाते हैं तब उनमें छायादार स्थान पर पैदा होने वाली फसलों के उत्पादन को बढ़ावा दिया जाता है। प्रयोग से यह स्पष्ट हुआ है कि आम के पूर्ण विकसित बाग में हल्दी को अंतसस्य उत्पादकता एवं शुद्ध लाभ के दृष्टिकोण से सर्वोत्तम पाया गया है। बाग की कुल उत्पादकता के आधार पर इससे रू 61,010/– का कुल शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ।

| अंतरफसल | उपज (क्विं/हे) | | शुद्ध लाभ (रू./हे) | | लाभ लागत अनुपात | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | अंतरफसल | आम | अंतरफसल | आम | कुल | रू. |
| उरद | 01.64 | 40.00 | 1,230 | 35,250 | 36,480 | 6:36:1 |
| बोदी | 12.77 | 46.00 | 2,860 | 41,250 | 44,110 | 6:34:1 |
| फ्रेंचबीन | 10.76 | 51.00 | 1,956 | 46,250 | 48,206 | 6:21:1 |
| धान | 01.14 | 45.00 | 1,430 | 40,250 | 38,820 | 6:75:1 |
| हल्दी | 74.72 | 47.60 | 18,160 | 42,850 | 61,010 | 3:50:1 |

# निरंतर गिरते भूमिगत जल के स्तर का प्रबंधन

संदीप कुमार पाण्डेय*, प्रमोद कुमार मिश्र*, सुशील कुमार पाण्डेय* एवं एच.सी. सिंह*

पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखने के लिए अन्न और जल सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है। भारत के प्राचीन ग्रंथों में लिखा गया है ''पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्, मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते'' अर्थात पृथ्वी पर जल, अन्न और सुभाषित ये तीन रन्त हैं किन्तु मूढ़ लोग पत्थर के टुकड़े को रत्न संज्ञा से पहचानते हैं। मनुष्य तथा जानवर दोनों ही बिना भोजन के कुछ दिनों तक तो रह सकते हैं लेकिन पानी के बिना नहीं रह सकते। मनुष्य अपने जीवन में पानी का उपयोग विभिन्न तरीकों से करता है उदाहरण के तौर पर पीने में, स्नान करने में, साफ सफाई करने में, ऊर्जा का उत्पादन करने में पौधों तथा फसलों की सिंचाई करने में और परिवहन इत्यादि में करता है।

विश्व में सम्पूर्ण जल का लगभग चार प्रतिशत ही शुद्ध जल के रूप में उपलब्ध है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा भूजल उपयोगकर्ता है। 2001 की जनगणना के अनुसार 25 प्रतिशत ग्रामीण और 65 प्रतिशत शहरी आबादी को ही हमारे देश में पर्याप्त पानी उपलब्ध है। वर्तमान में यह स्थिति और भी चिंताजनक है। वैज्ञानिकों का मानना है कि 2050 तक 30 फीसदी प्रति व्यक्ति पानी की कमी होगी। वर्तमान में उपलब्ध प्रति व्यक्ति 1140 क्यूसेक पानी के सापेक्ष तब प्रति व्यक्ति 1000 क्यूसेक पानी प्राप्त हो सकेगा। यहाँ सिंचाई के लिए 230 अरब घन मीटर भूजल प्रतिवर्ष दोहन होता है। भारत में कुल अनुमानित भूजल 122 से 199 अरब घन मीटर पाया गया है। देश के कुल सिंचित क्षेत्रफल के 60 प्रतिात से अधिक भू–भाग में सिंचाई के लिए भूजल का ही उपयोग किया जाता है। ऐसे क्षेत्रों सिंधु–गंगा के मौदान और भारत के उत्तर पश्चिमी, मध्य और पश्चिमी भाग शामिल हैं। कुछ क्षेत्रों (पश्चिमी भारत और सिंधु गंगा के मैदान) में 90 प्रतिशत से अधिक भूजल द्वारा सिंचित किया जाता है। देश के अधिकांश हिस्सों में भूजल का अत्यधिक दोहन एक प्रमुख पर्यावरणीय चुनौती है। उत्तर प्रदेश में गैर कानूनी रूप से भूमिगत पानी (भूजल) का अनियंत्रित दोहन बढ़ता जा रहा है जिसमें की भाबर तथा तराई क्षेत्र मुख्य हैं। जिनके द्वारा अपनी बढ़ती पानी की आवश्यकताओं के कारण नलकूपों द्वारा अंधाधुंध भूमिगत पानी का दोहन किया जा रहा है। जिससे कई अन्य जगहों पर भी भूजल स्तर निरंतर गिरावट होती जा रही है। इसके साथ ही फसलों को सिंचाई के लिए अत्यधिक भूमिगत जल के दोहन के कारण भूमिगत जलाशय तेजी से सिकुड़ रहा है।

उत्तर प्रदेश में, भूजल स्तर में गिरावट बहुत महत्वपूर्ण समस्या है। वर्ष 2019 में सेन्ट्रल ग्राउंड वाटर बोर्ड की एक रिपोर्ट के अनुसार राज्य के 89 प्रतिशत भाग में, गत दस वर्षों से जल स्तर में निरंतर गिरावट देखी गई है। वर्तमान आँकड़ों के अनुसार यह स्तर प्रतिवर्ष लगभग 40 से 48 मिमी की दर से घट रहा है तथा गंगा बेसिन के आस–पास के इलाकों में 20 मिमी की औसत दर से घट रहा है। भूजल स्तर के मासिक उतार–चढ़ाव मुख्य रूप से भूमिगत जल को रिचार्ज करने वाले मौसम से प्रभावित होते हैं। भूजल रिचार्ज करने का एकमात्र स्रोत वर्षा है। उत्तर प्रदेश में लगभग 61.6 प्रतिशत पानी कुओं और ट्यूबवेल जैसे स्रोत से आता है जिससे फसलों की सिंचाई की जाती है। भूजल को संरक्षित करने के लिए टपक सिंचाई, स्प्रिंकलर सिंचाई, लिफ्ट सिंचाई और नहरों के द्वारा सिंचाई इत्यादि विधियों को बढ़ावा देने के लिए सरकार भी निरंतर प्रयास कर रही है। हाल ही में, केंद्र सरकार ने जल संरक्षण के लिए, जल शक्ति अभियान की शुरूआत की है जिसके अंतर्गत जल संरक्षण के लिए बारिश के पानी को परम्परागत जल निकायों और टैंकों के माध्यम से रेन वाटर हार्वेस्टिंग संरचनाओं के

*आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

रूप में निर्माण किया जाना है। इन संरचनाओं के माध्यम से, बारिश के पानी को ज्यादा से ज्यादा रोक कर, जल के प्रभावशाली इस्तेमाल द्वारा भूजल स्तर में गिरावट को रोक कर भूजल को रिचार्ज किया जा सके। इसके लिए निम्न प्रयास किये जा रहे हैं–

## बारिश के पानी का संचयन करना

बारिश के जल को इकट्ठा करने के लिए तालाब का निर्माण करना अति आवश्यक है यदि संभव हो तो तालाब ऐसी जगह बनाया जाए जहाँ कम से कम लागत में भूमि की सतह की प्राकृतिक बनावट में थोड़ा सा ही फेरबदल करके तालाब का निर्माण किया जा सके और ज्यादा से ज्यादा क्षेत्र में जरूरत के अनुसार फसलों की सिंचाई के लिए पानी का उपयोग किया जा सके। इसके लिए तालाब का निर्माण ग्रामीण स्तर पर ग्राम प्रधान की मदद से या सहकारी समितियों के माध्यम से या सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त करके भी बनाया जा सकता है। इसके लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि तालाब का निर्माण पंचायत लेबल पर नियुक्त किए गए विशेषज्ञों या मृदा एवं जल विज्ञान विभाग के कृषि अभियांत्रिकी विभाग के वैज्ञानिकों से मिलकर विचार–विमर्श कर ही निमार्ण करवाना चाहिए। कुछ अन्य भी उपाय हैं जिसके द्वारा अन्न दाता बारिश के पानी को एकत्रित कर कुछ समय के लिए मृदा में नमी का संरक्षण कर सकते हैं जैसे की किसान भाई फसल के बीच में गहरी नालियाँ बनाकर भी जल संरक्षण कर सकते हैं, जिससे बारिश का पानी इकट्ठा होकर मृदा में काफी समय तक नमी बनी रह सके तथा दूसरा उपाय यह है कि फल वाले वृक्षों में जमीन में वृक्ष के बीच में छोटे छोटे गड्ढे बनाकर बारिश के पानी को सिंचित किया जा सकता है।

उन्नत और वैज्ञानिक तरीके से खेती करने से प्रति इकाई पानी की मात्रा से अधिक फसल का उत्पादन लिया जा सकता है। इस तकनीक में किसानों को ऐसी फसलों का चुनाव करना चाहिए जिनकी जड़ें मृदा में अधिक गहराई में जाकर वहाँ की नमी का उपयेग अपने जरूरत के मुताबिक कर सकें तथा सूखे की स्थिति में इस प्रकार के पौधे लगावे जिनकी वाष्पीकरण दर कम हो तथा इसके साथ ही समय–समय पर खेत से खरपतवार को निकालते रहना चाहिए, जिससे मृदा में नमी बनी रहे तथा फसलों में वृद्धि एवं विकास बराबर होता रहे। किसान बारिश के पानी का अधिक से अधिक उपयोग धान के खेतों में संचयन करके कर सकता है, इससे न की केवल धान की सिंचाई की आवश्यकता में कमी आएगी बल्कि इससे भूमिगत पानी को भी रिचार्ज किया जा सकता है। भूमिगत पानी की खपत को कम किया जा सकता है जिसके लिए विभिन्न विधियों को अपनाया जा सकता है।

## लेजर कराहा द्वारा भूमि का समतलीकरण

भूमि का समतलीकरण किसान द्वारा विभिन्न कृषि यंत्रों के द्वारा किया जाता है जिसमें कि लेजर कराहा द्वारा समतलीकरण एक महत्वपूर्ण तकनीक है। लेजर कराहा, ट्रैक्टर के द्वारा चलाने वाला कृषि यंत्र है जिसे प्रमुख अवयव घूर्णन लेजर प्रकाश स्रोत, रिसीवर, अर्थमूविंग ब्लेड और कंट्रोल बॉक्स है। इस तकनीक में सर्वप्रथम खेत का सर्वेक्षण किया जाता है तत्पश्चात घूर्णन लेजन प्रकाश स्रोत (एक लघु प्रकाश स्तंभ की तरह) को खेत के किनारे मेंड़ पर स्थापित किया जाता है। लेजर प्रकाश स्रोत, तीव्र गति के साथ घूमते हुए लेजर किरण छोड़ता है जिसको अर्थमूविंग ब्लेड पर लगा रिसीवर प्राप्त करता है। रिसीवर प्राप्त लेसर किरण के अनुसार कंट्रोल बॉक्स सिग्नल भेजता है जिससे अर्थमूविंग ब्लेड ऊपर या नीचे उठता रहता है। अर्थमूविंग ब्लेड से हाइड्रॉलिक डक्ट के माध्यम से ट्रैक्टर के साथ जुड़ा होता है। ट्रैक्टर चालक को सिर्फ, ट्रैक्टर को लेजर कराहा के साथ जोड़ कर पूरे खेत में घुमाना रहता है जिससे भूमि का समतलीकरण अपने आप होता रहता है। भूमि के समतलीकरण हो जाने की वजह से पौधों तथा फसलों की जड़ों में जल एक समान वितरण होता है और जल की बचत होती है।

विभिन्न प्रकार के अध्ययनों के अनुसार, धान के खेत में लेजर कराहा द्वारा समतलीकरण से 10 प्रतिशत तथा गेहूँ के खेत में 10–20 प्रतिशत तक पानी की बचत के साथ 10 से 15 प्रतिशत तक उपज भी अधिक मिलती है। इसके उपयोग से बीज, उर्वरक, रसायन और ईंधन की बचत होती है।

## टपक सिंचाई प्रणाली तथा फसल चक्र का उपयोग

किसान भाइयों को धान–गेहूँ फसल चक्र को छोड़कर संरक्षित खेती प्रणाली या सब्जियों अथवा फलों की खेती को अपनाना चाहिए, इस प्रकार की खेती का अनुसरण करने में कठिनाई बहुत हैं परन्तु इस प्रकार की खेती से मुनाफा भी बहुत अधिक है तथा इसमें अपार संभावनाएं भी हैं। किसान भाइयों के द्वारा सब्जियों तथा फलों की खेती के साथ–साथ यदि टपक सिंचाई या बूँद–बूँद सिंचाई प्रणाली का प्रयोग किया जाए तो पानी की लगभग 40–50 प्रतिशत की बचत की जा सकती है। टपक सिंचाई प्रणाली में ड्रिपर द्वारा पानी बूँद–बूँद के रूप में पौधों की जड़ों के पास में दिया जाता है। टपक सिंचाई प्रणाली सब्जियों तथा फलों के लिए रामबाण सिद्ध हुई है। इस विधि के द्वारा पानी की मात्रा 0.50 से लेकर 20 लीटर प्रति घंटा तक मृदा के प्रकार के अनुसार सुनिश्चित किया जा सकता है। टपक सिंचाई की जल उपयोग की दक्षता 90 प्रतिशत तक होती है जो कि अन्य विधियों की तुलना में काफी अधिक है। इस प्रणाली के उपयोग से फसलों के उत्पादन में 25–30 प्रतिशत तक की वृद्धि की जा सकती है। अच्छी तरह से स्थापित प्रणाली से 40–45 प्रतिशत तक की वृद्धि दर्ज की जा चुकी है। टपक सिंचाई का एक बड़ा अन्य लाभ यह भी है कि यह विभिन्न क्षेत्रों जैसे कि शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में पाए जाने वाले भूमिगत लवणीय पानी को भी इसके द्वारा उपयोग में लाया जा सकता है। जिसका प्रयोग करके काफी मात्रा में पानी तथा रसायनिक उर्वरकों की बचत की जा सकती है जिससे पानी की बचत के साथ भूमिगत पानी को अधिक मात्रा में उपयोग किये जाने वाले उर्वरकों से प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है।

## भूमिगत पानी को रिचार्ज करना

भूमिगत पानी के स्तर में गिरावट को रोकने के लिए बारिश के पानी को बहाकर नदियों, नालों और झरनों में जाने की अपेक्षा भू–जल रिचार्ज के लिए प्रयोग करने पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। इसके लिए ग्रामीण स्तर पर निम्न उपाय किये जा सकते हैं–

- पुराने तालाबों की खुदाई एवं इसके नवीनीकरण द्वारा गाँवों के व्यर्थ बह जाने वाले बारिश के पानी को सिंचित किया जा सकता है तथा इस पानी का उपयोग फसलों की सिंचाई करने में किया जा सकता है। यह प्रक्रिया भूमिगत पानी के स्तर को सुधारने में भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसके लिए सरकार द्वारा पंचायत स्तर पर मनरेगा के तहत गाँवों में तालाब की खुदाई पर काफी महत्व दिया जा रहा है।
- गिरते हुए भूजल स्तर को स्थिर करने के लिए वर्षा अथवा नहर से मिलने वाले पानी को जमीन के अंदर भेजा जा सकता है, इसके लिए एक सस्ती एवं कम रख–रखाव वाली सॉफ्ट प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है।
- बारिश में छत के पानी का उपयोग भूमिगत पानी का रिचार्ज किया जा सकता है। यह एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा भूजल को रिचार्ज किया जा सकता है।
- पंजाब कृषि विश्वविद्यालय लुधियाना के वैज्ञानिकों द्वारा घर की छतों से बारिश के पानी को सिंचित कर भूमि गत पानी को रिचार्ज करने की उत्तम तकनीक का विकास किया गया है, जिसके द्वार भूजल को रिचार्ज किया जा सकता है।
- वाटर शेड का निर्माण करके भी जल को संरिक्षत किया जा सकता है, जिसके पानी का उपयोग कृषि में सिंचाई के लिए किया जा सकता है।

बारिश के पानी से भूजल को रिचार्ज करने के लिए इस यूनिट को सरकारी भवनों की छत पर बनाकर बारिश के पानी से भूमिगत पानी को रिचार्ज किया जा सकता है और भविष्य में आने वाले पानी के संकट को भी बचाया जा सकता है।

इस सिस्टम में बारिश का पानी छत की पाइप द्वारा इनलेट पाइप से होता हुआ पानी साफ करने वाले टैंक के माध्यम से दानेदार बजरी से गुजरते हुए आउटलेट टैंक में आता और यहाँ से ये रिचार्ज करने वाले कुएँ में चला जाता है और भूमिगत पानी को रिचार्ज कर देता है।

## सतही जल निकास या शहरी जल निकास के पानी का कृषि में उपयोग

सतही जल निकास नालियों के पानी की गुणवत्ता कृषि में प्रयोग के लिए उपयुक्त है। इसीलिए सतही नालियों के पानी को फसलों की सिंचाई के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। भूमिगत जल निकास नालियों से निकलने वाला पानी कम अथवा अधिक लवणीय हो सकता है। परन्तु यह देखने में आया है कि भूमिगत जल निकास लगाने के उपरांत इस तंत्र से निकलने वाले जल की गुणवत्ता अच्छी हो जाती है। जहाँ कम लवणीय पानी का प्रयोग सीधे ही उपयोग में लाया जा सकता है। वहीं अधिक लवणीय पानी को नहर के पानी में मिक्स करके फसलों की सिंचाई के प्रयोग में लाया जा सकता है।

## भूमिगत पानी में कमी के कुछ नकारात्मक प्रभाव

भूमिगत पानी घटती दर के कुद नकारात्मक प्रभाव भी देखे गए हैं जो निम्न हैं

- वाटर लेबल का कम होना।
- लागत में बढ़ोत्तरी होना।
- भूस्खलन होना।
- सरफेस वाटर सप्लाई का कम होना।
- पानी की गुणवत्ता का खराब होना आदि।

अतः उपरोक्त दी गई जानकारी एवं सुझावों के माध्यम से बारिश के पानी तथा सतही जल को सिंचित करके निरंतर गिरते भूमिगत पानी के स्तर का प्रबंधन किया जा सकता है।●

---

(पृष्ठ 8 का शेष)

### नियंत्रण

फसल पर 20–25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 10 प्रतिशत बी.एच.सी. का छिड़काव करें।

### जड़ बेधक

**क्षतिः** प्ररोह के आधारीय सिरे पर बेधक का छेद बन जाता है। ऐसे केन्द्र बन जाते हैं, जिसे आसानी से नहीं देखा जा सकता है।

### नियंत्रण

क्लोरोपायरीफास 1 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

### चोटी बेधक

**क्षतिः** चोटी बेधक का खड़ी फसल में पहचान यह है कि यह कीट गन्ने के तने एवं पत्तियों को सूखाकर डेड हर्ट बना देते हैं।

### नियंत्रण

इसके नियंत्रण के लिए कार्बोफ्यूरान 3 जी अथवा फोरेट 10 जी दवा 1 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से डालने पर इसके प्रकोप को नियंत्रित किया जा सकता है।

### तना बेधक

**क्षतिः** इसका प्रकोप वर्षाकाल के बाद जल भराव की स्थिति में अधिक पाया जाता है। गन्ना गिरने की स्थिति में इसका प्रकोप और अधिक हो जाता है।

### नियंत्रण

अगस्त के बाद 1–1 महीने के अंतराल पर मोनोक्रोटोफास दवा 0.75 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से दो बार छिड़काव करना चाहिए।●

# ग्रामीण महिलायें आत्मनिर्भर कैसे बनें?

विभा परिहार* एवं डी.के. द्विवेदी**

जिन्दगी की राह आसान नहीं है। कड़ी मेहनत और संघर्ष से रास्ते खुद ब खुद बनाने पड़ते हैं। इस बात में कोई दो राय नहीं कि हाल के दिनों में चाहे वो ग्रामीण महिलायें हों या शहरी, हर क्षेत्र में काम कर रही है और हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं। ग्रामीण महिलाओं ने भी हर क्षेत्र की मुश्किलों को पार किया है और वे बड़ी से बड़ी चुनौतियों का सामना करके आगे बढ़ रही है।

ग्रामीण महिलायें परिवार में खाना बनाना, बच्चों की देखभाल करना और घर–परिवार की सारी जिम्मेदारी उठा रही हैं, इन सबके बावजूद हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं। परिवार की देखभाल के साथ–साथ परिवार को आर्थिक रूप से सक्षम बनाने में सहयोग प्रदान कर रही हैं और परिवार के विकास में सहायक सिद्ध हो रही हैं।

भारतीय वाणिज्य एवं उद्योग मंडल (एसोचेम) द्वारा कामकाजी महिलाओं पर हुए एक शोध के नतीजे बताते हैं कि शादी और परिवार की जिम्मेदारी की वजह से करीब 40 प्रतिशत महिलायें अपना काम छोड़ देती हैं। शोध में यह बात भी सामने आई है कि लगभग 78 प्रतिशत कामकाजी महिलायें लाइफ स्टाइल डिसऑर्डर से ग्रसित हैं, जबकि 42 प्रतिशत महिलायें पीठ दर्द, मोटापा, डिप्रेशन, डायबिटीज, ब्लड प्रेशर से परेशान हैं। आँकड़ें अपनी जगह हैं लेकिन महिलाओं के आत्मनिर्भर बनने की इस कहानी में एक नये युग का सूत्रपात छिपा हुआ है।

लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को परिवार में ज्यादा महत्व दिया जाता है। ऐसा लैंगिक भेदभाव महिलाओं के आत्मनिर्भर बनने में एक बड़ी बाधा है। लैंगिक भेदभाव की वजह से भी महिलायें अपनी मंजिल पर नहीं पहुंच पाती हैं। घर और ऑफिस में महिलाओं को लैंगिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है इसके बावजूद भी ग्रामीण बहनें इन सबका सामना करते हुए अनेक क्षेत्रों में आगे बढ़ती जा रही हैं। घर पर खाली बैठने से अच्छा है कि अपने शौक को व्यवसाय का रूप देकर आत्मनिर्भर बनने की दिशा में आगे बढ़ें।

सर्वप्रथम ग्रामीण बहनें अपने शौक को पहचाने या यह देखें कि उन्हें किस क्षेत्र में सबसे ज्यादा रूचि है। रूचि या शौक के हिसाब से अपने व्यवसाय को चुनें या इसमें ऐसे लोग जो उन्हें व्यवसाय चुनने में मदद या गाइड कर सकें उनसे सहायता लेकर अपना स्वयं का व्यवसाय आरम्भ करें। ग्रामीणी क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूह बनाकर भी व्यवसाय प्रारम्भ कर सकती हैं।

इसके लिए उन्हें यह देखना होगा कि वह अकेली इस दिशा में आगे बढ़ना चाहती हैं या ग्रुप में काम करना चाहती हैं। यदि छोटी पूंजी से व्यवसाय आरम्भ करना चाहिती हैं, तो उस पूंजी के अनुसार यह देखें कि इस पूंजी से कौन–कौन से रोजगार या व्यवसाय कर सकती हैं। उनमें से एक व्यवसाय चुनकर उसकी शुरूआत कर सकती हैं और जो लोग ऐसे कार्य कर रहे हैं उनसे भी सहायता ले सकती हैं। आजकल स्वयं सहायता समूहों को सरकार छोटे ऋण भी प्रदान कर रही है। लोगों का समूह बना लें फिर आपस में तय करके एक व्यवसाय चुनें। व्यवसाय चुनने के बाद सरकार से ऋण या लोन के लिए अप्लाई करें। फिर लोन मिल जाने पर अपने काम की शुरूआत करें या जितने लोग ग्रुप में हैं वह स्वयं थोड़ा–थोड़ा पूंजी (जितना वह लगा सकती हैं) लगाकर शुरूआत कर सकती हैं।

आजकल ग्रामीण क्षेत्रों में कई छोटे या बड़े समूहों में महिलायें कुटीर और लघु व्यवसाय में लगी हुई हैं और धन अर्जित कर स्वयं व अपने परिवार को आर्थिक मदद कर रही हैं।

ग्रामीणी महिलायें कुटीर या लघु उद्योगों को अपनाकर व्यवसाय प्रारम्भ कर सकती हैं। वर्तमान समय में

*सहायक प्राध्यापक, टैक्सटाइल एण्ड एपरल डिज़ाइनिंग विभाग, कम्युनिटी साइंस महाविद्यालय, **प्रोफेसर, डीन, कम्युनिटी साइंस महाविद्यालय

कोरोना महामारी फैली हुई है। जिसकी वजह से लोगों को मास्क लगाना अत्यन्त आवश्यक हो गया है मास्क न लगाने पर सजा का भी प्रावधान है। इसलिए कई किस्मों के कपड़ों से सस्ते और टिकाऊ मास्क बनाकर उन्हें बेचकर अपना व्यवसाय आरम्भ कर सकती हैं। मास्क ऐसे हों जिनसे बाहर फूंकने पर मोमबत्ती न बुझे ऐसे मास्क बीमारी से बचने में सुरक्षा प्रदान करते हैं।

कुटीर उद्योगों में अचार, पापड़, पानी की फुलकी या बताशे बनाना, अखबार के लिफाफे बनाना या बाँसी कागज के लिफाफे बनाना। पॉलीथीन बैन होने से आजकल अखबार के लिफाफे एवं बासी कागज के लिफाफों की मांग बढ़ रही है। पुराने कपड़ों के झोले बनाना, सिलाई बुनाई, कढ़ाई के द्वारा छोटे बच्चों के स्वेटर, कपड़े आदि बनाना, कपड़ों पर कढ़ाई करके मेजपोश आदि तैयार करना, चिकन कढ़ाई करना, औरतों के पेटीकोट ब्लाउज आदि बनाना यदि थोड़ी बहुत जमीन है तो फूल और सब्जी की पौध तैयार कर बेचना, मिट्टी के खिलौने तैयार करना, कुल्हड़ बनाना आदि ये सब कार्य कुटीर उद्योगों की श्रेणी में आते हैं। लघु उद्योगों में जैसे तेल पेरने की मशीन लगाना, आटा चक्की लगाना, अचार बनाकर शीशी में भर कर बेचना, मुरब्बा आदि बनाना, सिलाई, बुनाई कढ़ाई सिखाने का सेन्टर वाले व्यवसाय अपनायें।

केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा समय–समय पर विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में ट्रेनिंग कार्यक्रम चलाये जाते हैं। इन ट्रेनिंग कार्यक्रमों में 15 दिन एक महीना, तीन महीना, 6 महीना या सालभर के ट्रेनिंग कार्यक्रम चलाये जाते हैं, जिनमें कुटीर एवं लघु उद्योगों की ट्रेनिंग दी जाती है। इन कार्यक्रमों से ग्रामीण महिलायें ट्रेनिंग लेकर अपना स्वयं का व्यवसाय शुरू कर सकती हैं। इन ट्रेनिंग कार्यक्रमों में मोमबत्ती बनाना, अचार बनाना, पापड़ बनाना, सिलाई करना, कढ़ाई एवं बुनाई आदि सिखाया जाता है। समय अन्तराल पर ऐसे ट्रेनिंग कार्यक्रम सरकार द्वारा एवं विभिन्न एनजीओ द्वारा चलाये जाते हैं। जहां पर ग्रामीण महिलायें अपने मनपसन्द समयानुसार ट्रेनिंग लेकर अपनी पूंजी लगाकर स्वयं का व्यवसाय प्रारम्भ कर सकती हैं जिससे उन्हें स्वयं तो फायदा होगा ही साथ ही वे अपने परिवार की भी आर्थिक मदद कर सकती हैं।

ग्रामीण महिलायें 15 दिन या एक माह के ट्रेनिंग कार्यक्रम में मोमबत्ती बनाना सीखें फिर उसे सीखकर घर पर ही उसे शुरू करें और तैयार माल को आस–पास या बाजार में दुकानों पर बेचकर धन अर्जित कर सकती हैं। इसी प्रकार अन्य ट्रेनिंग कार्यक्रम अपनी पसन्त अनुसार सीखकर अपना स्वरोजगार या व्यवसाय आरम्भ कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न हस्तकला कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं जिनमें इन हस्तकलाओं को सीखकर स्वयं का रोजगार आरम्भ किया जा सकता है। केन्द्र व राज्य सरकारों द्वार महिला विकास, समाज कल्याण विभाग, महिला एवं बाल विकास विभागों द्वारा स्वरोजगार शुरू करने हेतु अल्प समय के निःशुल्क ट्रेनिंग सेंटरों में भी ट्रेनिंग कार्यक्रम समय–समय पर चलाये जाते हैं। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों से ट्रेनिंग प्राप्त कर ग्रामीणी महिलायें अपना रोजगार या व्यवसाय प्रारम्भ कर रही हैं और धन अर्जित कर रही हैं साथ ही समाज व देश के विकास में भी भागीदार बन रही हैं।

राज्य सरकारों व केन्द्र सरकारों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में एवं छोटे–बड़े कस्बों में छोटे–छोटे कटाई, बुनाई, सिलाई के ट्रेनिंग सेन्टर खोले गये हैं जिनमें हमारी पिछड़े वर्ग और अनुसूचित वर्ग की महिलायें निःशुल्क ट्रेनिंग प्राप्त कर सकती हैं। जिला स्तर पर उच्च गुणवत्ता वाले ट्रेनिंग एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त जनपदों के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में प्राइवेट व्यक्तियों द्वारा एवं विभिन्न संस्थाओं द्वारा सिलाई, बुनाई, कढ़ाई एवं ब्यूटीपार्लर कोर्स एवं बुटीक कार्यक्रम की ट्रेनिंग प्रदान की जा रही है, इनमें से किसी एक कोर्स का चुनकर उसका प्रशिक्षण प्राप्त कर ग्रामीण महिलायें अपना स्वयं का रोजगार या व्यवसाय आरम्भ करें जिससे स्वयं वो अपने पौरों पर खड़ी होंगी व स्वावलम्बी बनेंगी साथ ही

(शेष पृष्ठ 19 पर)

# किसान बहनों के लिए अतिरिक्त आय का स्रोत दुग्ध से बने उत्पाद

रूमा देवी

दूध एक पूर्ण पौष्टिक, आदर्श एवं अत्यन्त आवश्यक भोज्य पदार्थ है। इसमें सभी प्रकार के आवश्यक पोषक पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपस्थित होते हैं जैसे दूध का कार्बोहाइड्रेट या शर्करा या लैक्टोज एवं वसा जोकि हमारे शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं। इसमें प्रचुर मात्रा में प्रोटीन भी पाया जाता है जो कि मानव शरीर के निर्माण में मदद करता है। विटामिन एवं खनिज लवण इत्यादि भी दूध में होते हैं जो कि हमारे स्वस्थ्य शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक है। दूध एक पूर्ण पौष्टिक एवं अत्यन्त आवश्यक भोज्य पदार्थ तो है ही इसके अतिरिक्त ऐसे पोषक पदार्थ अच्दे से हजम एवं शरीर में समावेश भी हो जाते हैं। दूध की इसी विशेषता के कारण ये गर्भवती महिलाओं, बढ़ते हुए शिशु, किशोर, वयस्क, बुजुर्ग एवं रोगी के लिए महत्वपूर्ण आहार है।

पशु से दूध निकालने के बाद इसको यथाशीघ्र विक्रय कर देना यास उपयोग में ले लेना हमारी किसान बहनों की सबसे बड़ी विशेषता है। दूध में जीवाणुओं के उपज के लिए सभी प्रकार के आवश्यक पोषक पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपस्थित होते हैं जिससे दूध शीघ्र ही खराब हो जाता है, इसी कारण से दूध को लंबे समय तक यथावत नहीं रखा जा सकता है अतः दूध को विभिन्न विधियों के द्वारा अनेक प्रकार के उत्पादों में बदला जा सकता है। यह उत्पाद दूध की तुलना में न केवल अधिक समय तक रखे जा सकते हैं बल्कि अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बनाने में भी काम आते हैं और ये दूध की तुलना में ज्यादा महंगा बिकता है। पूरे विश्व में दुग्ध उत्पादन 1 प्रतिशत के हिसाब से बढ़ रहा है और हमारे भारत में 4.5 प्रतिशत से बढ़ रहा है। यही वजह है कि भारत वर्ष की किसान बहनों की आय को बढ़ाने के लिए दूध से बने उत्पाद का व्यवसाय अत्यन्त तेजी से बढ़ रहा है।

## दूध से बने उत्पाद

दूध से निम्न उत्पाद बनाये जा सकते हैं जैसे– क्रीम, मक्खन, घी, खोआ, छैना, पनीर, दही, आईसक्रीम, संघनित दूध, किण्वित दुग्ध पदार्थ एवं अकिण्वित दुग्ध पदार्थ।

## सावधानी

अच्छा दुग्ध उत्पाद बनाने के लिए स्वच्छ दूध चाहिए, जिसके लिए हमारी किसान बहनें स्वच्छ दूध का उत्पादन इस प्रकार करें जिससे उसमें बैक्टीरिया की संख्या, दृश्यवाहक पदार्थ, हानिकारक तथा बीमारियाँ फैलाने वाले बैक्टीरिया की संख्या कम से कम हो। दूध में किसी भी प्रकार की मिलावट नहीं करना चाहिए।

## पनीर बनाने की प्रक्रिया

पनीर, दूध से बना ऐसा अत्यन्त स्वादिष्ट पौष्टिक एवं सुपाच्य खाद्य पदार्थ है जिसे अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसको बनाने के लिए सर्वप्रथम बर्तन जैसे कि बड़ा भगोना, बड़ी कलछुल तथा छानने के लिए सूती कपड़ा जो गरम पानी में धुला हुआ हो एवं दूध, दूध फाड़ने का पदार्थ जैसे कि पनीर का पानी, सिट्रिक अम्ल या नींबू का रस को इकट्ठा कर लें। इसके बाद नापे हुए दूध को भगोने में 4–5 मिनट उबालें फिर गैस को बन्द कर दें। जब दूध 82 डिग्री सेन्टीग्रेड तक ठंडा हो जाये, गैस को बन्दर करके उबले हुए दूध को 4–5 मिनट चलायें उसके बाद दूध को फाड़ने वाले पदार्थ 1–2 प्रतिशत की मात्रा में मिलाकर दूध को फाड़ लें। फटे हुए दूध को सूती कपड़े में रख कर छान लें एवं सूती कपड़े सहित पनीर को 2–3 बार साफ पानी से धुल लें तथा 4–5 किलो के वजन से 5–10 मिनट तक दबायें फिर सूती कपड़े से पनीर को निकाल कर ठंडे पानी में डुबोकर रख दें।

*सहायक प्राध्यापक, पशु उत्पाद प्रौद्योगिकी विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

ध्यान रहे कि दूध में दूध को फाड़ने वाला पदर्थ तब तक मिलाते रहें जब तक पनीर और उसमें हल्का हरा पीला पानी न दिखने लगे और जब दिखने लगे तब फाड़ने वाला पदार्थ डालना बन्द कर दें। साथ ही ये भी सावधानी बरतनी चाहिए कि 82 डिग्री सेन्टीग्रेड पर उबले हुए दूध में फाड़ने वाला सारा पदार्थ 30 सेकेण्ड के अन्दर डाल दिया जाए।

**यदि दूध हलका सा खट्टा हो जाए?** अगर ऐसा हो जाए तो उस दूध से पनीर बना लें।

## गर्मियों के दिनों में दूध जल्दी खराब हो जाता है इसको सुरक्षित रखने के लिए सुझाव

गर्मियों के दिनों का तापमान ज्यादा होता है जिसके कारण दूध में जीवाणुओं की वृद्धि बड़ी अच्छी तरह से होती है जो दूध को कुछ ही घण्टों में अनुपयोगी बना देते हैं इसलिए इन दिनों में दूध को खट्टा बना देना चाहिए ऐसा करने पर दूध अधिक समय तक ताजा रखा जा सकता है। इन दिनों में दूध से दही, योगर्ट, लस्सी एवं मट्ठा बना लें और अगर ऐसा नहीं कर रही हैं तो कच्चे दूध को अच्छी तरह उबाल कर ठंडा करके तुरंत ही फ्रिज में रख देना चाहिए।

## भारत सरकार की योजनायें

भारत सरकार ने किसान बहनों के लिए स्वयं सहायता समूह एवं स्टार्ट अप इंडिया स्टैंड अप इंडिया योजनाएं बनाई हैं जिसके तहत नये छोटे बड़े उद्योगों को शुरू करने के लिए सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिया जाता है। जिसमें लोन सुविधा, उचित मार्ग दर्शन एवं स्किल डेवलेपमेंट ट्रेनिंग भी दी जाती है। स्वयं सहायता समूह महिलाओं के सशक्तिकरण का माध्यम बन गया है खासकर ग्रामीण क्षेत्र में यह महिलाओं को सशक्त और आर्थिक रूप से समृद्ध बनाने के लिए एक कारगर माध्यम है।

दुग्ध पदार्थ एक ऐसा खाद्य पदार्थ है जिनकी माँग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है जिस कारण हमारी किसान बहनें अगर चाहें तो अपनी थोड़ी सी सूझ बूझ का प्रयोग करके अपने घर पर ही विभिन्न प्रकार के दुग्ध उत्पाद बनाकर सबका मन जीत सकती हैं तथा अपना व अपने परिवार का पोषण अच्छा बना सकती हैं। दुग्ध उत्पाद दुध की तुलना में ज्यादा पौष्टिक एवं महंगे बिकते हैं अतः इनको बाजार में बेंच कर किसान बहनें सशक्त एवं आर्थिक रूप से समृद्ध बनें।●

---

(पृष्ठ 17 का शेष)

उनके द्वारा उनके परिवार को भी आर्थिक लाभ पहुंचेगा और इस प्रकार उनके स्वरोजगार से समाज व देश भी लाभान्वित होगा।

इसके अतिरिक्त आर्थिक रूप से सबल ग्रामीण महिलायें 6 माह या सालभर का डिप्लोमा कोर्स कर सकती हैं। विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों में भी कई प्रकार के डिप्लोमा और फैशन डिजाइनिंग कोर्स चल रहे हैं। वर्तमान एमएसएमई योजना के तहत कम ब्याज पर लोन मिल सकता है जिसे साल भर बाद चुकाया जा सकेगा, ऐसी योजनाओं में लोन प्राप्त करके वह अपना रोजगार शुरू कर सकती हैं।

स्वयं तैयार किये गये वस्त्र में जैसे मास्क, झबले, फ्राक, सलवार, कुर्ते, जवाहर बण्डी, कुर्ता, पैजामा, पैण्ट शर्ट, ब्लाउज, पेटीकोट, टीवी, फ्रिज मोबाइल आदि के कवर सोफा कवर तकिया कवर तैयार कर उन पर सुन्दर और आकर्षक कढ़ाई करके ऑर्डर पर या मांग के अनुसार उपभोक्ता को सीधे बेच सकती हैं या गाँव–गाँव जाकर फेरी लगाकर भी बेचा जा सकता है। साड़ी आदि में पीको, फाल आदि लगाकर धनार्जन किया जा सकता है। इन कामों में प्रशिक्षण प्राप्तकर ग्रामीण महिलायें घर पर रोजगार भी शुरू कर सकती हैं।

अंत में हम कह सकते हैं कि ग्रामीण महिलायें ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त कर स्वयं का रोजगार शुरू कर धन अर्जित कर सकती हैं और स्वयं व अपने परिवार को भी मजबूती प्रदान कर सकती हैं।●

# मछलियों के प्रमुख रोग एवं प्रबंधन

रवि कुमार*, ए.पी. राव**, एस.के. सामल* एवं लक्ष्मी प्रसाद**

भारत में मत्स्य पालन की दृष्टि से जल संसाधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण मत्स्य मांस की माँग में भी व्यापक वृद्धि हुई है। इस माँग को पूरा करने के लिए मत्स्य पालन की वैज्ञानिक विधियों का क्रमिक विकास हुआ है। आज पारम्परिक विधियों की तुलना में अर्धसघन, सघन, मिश्रित एवं एकीकृत मत्स्य पालन से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। इन पद्धतियों में संसाधनों का संतुलित प्रयोग किया जाता है। सघन एवं अति सघन मत्स्य उत्पादन पद्यतियों में मत्स्य उत्पादकता परिपूरक आहार, जल की गुणवत्ता एवं उत्तम प्रकृति के मत्स्य बीज पर भी निर्भर करती है। संचय दर अधिक होने पर भौतिक एवं रसायनिक कारकों का संतुलित अवस्था में होना जल की गुणवत्ता को निर्धारित करता है। जब यह संतुलन नहीं बन पाता है, तो मछलियाँ तनाव की अवस्था में पहुँचने लगती हैं। तनावग्रस्त मछलियों की ऊर्जा रोगजनक जीवाणुओं के प्रतिरोध में खर्च होती है। धीरे–धीरे मछलियों की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है एवं मछलियाँ रोग ग्रस्त होने लगती हैं। सही समय पर उपचार की कमी के कारण मछलियों की मृत्यु होने से मत्स्य पालकों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है, इसलिए रोगों के कारण, उनके लक्षण एवं रोकथाम की विस्तृत जानकारी होने से रोग द्वारा होने वाली आर्थिक हानि से बचा जा सकता है।

## जीवाणु जनक रोग

सामान्य तौर पर तालाब के परितन्त्र में अनेक प्रकार के रोगजनक जीवाणु उपस्थित रहते हैं। परिस्थितियाँ इनके अनुकूल होने पर इनकी जनसंख्या में तीव्र गति से विकास होता है। ये जीवाणु रोग के जनक का काम करते हैं। इनमें एरोमोनाज हाइड्रोफिला, स्यूडोमोनाज, एरोमोनाज, सालमोनीसिडा, फ्लेक्सीवेक्टर कोलम्नोरिस, एडवार्डसिला टार्डा व बिब्रिओं अलजिनोलिटिकस प्रमुख हैं।

## एारेमोनिएसिस

यह रोग एरोमोनाज हाइड्रोफिला एवं एरोमोनाज सालमोनीसिडा द्वारा जनित हैं। ये जीवाणु मछलियों में प्राथमिक एवं द्वितीयक रोग पैदा करते हैं। इस रोग के लक्षणों में मछलियों के शरीर पर रक्तसम लाल धब्बे प्रमुख रूप से मुँह, पंखों एवं गुदा के आस–पास फैलने लगते हैं। धीमे–धीमे त्वचा में ये जीवाणु घाव उत्पन्न करते हैं। कुछ समय पश्चात मछलियों के पंख सड़ने लगते हैं। यह रोग बरसात के समय जैविक एवं कार्बनिक पदार्थों की अधिकता एवं उचित पोषक तत्वों के अभाव में मछलियों में अधिक देखा गया है। एरोमोनिएसिस होने से मछलियों में 80 प्रतिशत तक मृत्यु दर हो सकती है। इससे बचाव करने के लिए तालाब के जल की सही गुणवत्ता एवं वातावरण तनावमुक्त रखना चाहिए। इसके लिए 15–25 प्रतिशत पानी एक माह में बदलना, चूने का समय पर पी.एच. के अनुसार उपयोग करना, संचय दर सही रखना एवं सही मात्रा में पोषक तत्वों युक्त आहार मछलियों को देना चाहिए।

## हीमोरेजिक सेप्टीसीमिया

यह रोग स्यूडोमोनाज फ्लूरोसेन्स द्वारा जनित है। प्रमुख लक्षणों में मछलियों के अन्दरूनी अंगों से रक्तस्राव, त्वचा पर घाव उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोग के प्रमुख कारणों में संचय दर अधिक होना, घुलित ऑक्सीजन कम होने से उत्पन्न तनाव है। आक्सीटेट्रासाईक्लीन, केनामाईसिन, टेरामाईसिन एवं स्ट्रेप्टोमाइसिन का प्रयोग इस रोग के नियंत्रण में मदद करता है।

*भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, महात्मा गांधी समेकित कृषि अनुसंधान संस्थान, पूर्वी, चंपारण, बिहार–845429, **आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

## एडवार्डसिलोसिस

एडवार्डसिलोसिला टार्डा नामक जीवाणु इस रोग का जनक है। मछलियों में अल्परक्तता, त्वचाक्षय व ऊतकक्षय जैसे प्रमुख लक्षण इस रोग में देखे जाता हैं। प्रदूषित जल में यह रोग तेजी से बढ़ता है। डिम्भो एवं प्रजनकों में यह रोग अधिक पाया जाता है। इसके नियंत्रण के लिए तनुआयोडीन का घोल एवं ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन का प्रयोग किया जाता है।

## कोलम्नेरिस (काटन माउथ डिजीज)

यह रोग फ्लेक्सीवेक्टर कोलम्नेरिस जीवाणु द्वारा होता है। इस रोग के लक्षण में शरीर के पृष्ठ भाग एवं मुख पर धब्बे दिखाई देते हैं, जो पूरे शरीर को ढक लेते हैं। गलफड़ों में गिल तन्तुओं का क्षय होने लगता है। माँसपेशियों में लालिमा दिखाई देने लगती है। इसके नियंत्रण हेतु पोटैशियम परमैग्नेट के घोल (500 मिग्रा/लीटर) में मछलियों को डुबोने से लाभ मिलता है।

## विब्रिओसिस

इस रोग के कारणों में विब्रिओ एन्गुईलेरम, बिब्रिओ पैराहिमोलिटिकस, बिब्रिओ एल्जीनोलिटिकस जीवाणु प्रमुख है। लक्षणों में मछली के मुँख, गलफड़ों एवं शरीर के उदरीय भाग पर रक्तस्राव होने लगता हैं। आन्तरिक अंगों में प्लीहा के आकार में वृद्धि एवं सूजन हो जाती है साथ ही साथ वृक्क के ऊतकों का क्षय होने लगता है। प्रभावित होने वाली प्रजातियों में कॉर्प, ट्राऊट, ईल एवं टिलापिया प्रमुख हैं। इसके नियंत्रण हेतु सल्फोमिराजीन, आक्सीटेट्रासाईक्लीन दवाओं का प्रयोग किया जाता है।

## ड्राप्सी

यह रोग एरोमोनाज जीवाणु के कारण होता है। इस रोग में मछली के शल्क ढीले हो जाते हैं। वृक्क भी सही तरीके से तरल पदार्थ को नहीं छान पाते हैं, जिससे शरीर में पानी जमा हो जाता है, जिसके कारण शरीर फूला–फूला लगने लगता है। भारतीय मेजरकार्प मछलियों में भी यह रोग देखा गया है। इस रोग के नियंत्रण के लिए पोटैशियम परमैग्नेट 0.5 मिग्रा/लीटर की दर से जल में प्रयोग करने पर लाभ देखा गया है।

## कतला–कतला का आँख का रोग

यह रोग एरोमोनाज लिक्वीफेसियास नामक जीवाणु द्वारा होता है। इस रोग के लक्षणों में नेत्र लाल रंग के होने के उपरान्त अपारदर्शी हो जाते हैं, जिससे मछली को दिखाई नहीं देता है। नेत्रों से दिखाई न देने के कारण भोजन पर्याप्त मात्रा में नहीं खा पाती है तथा ये अपनी सुरक्षा परभक्षियों से भी नहीं कर पाती हैं, परिणामस्वरूप मछलियाँ कमजोर होने लगती हैं, तत्पश्चात मरने लगती हैं। पुराने तालाबों में जहाँ कार्बनिक तत्व अधिक रहते हैं, यह रोग अधिक देखा गया है। इसकी रोकथाम के लिए पोटैशियम परमैग्नेट दवा को 1.0 मिग्रा/लीटर की दर से प्रयोग करते हैं एवं ऑक्सीजन की मात्रा को बढ़ाते हैं।

## जीवाणु जनित अन्य रोग

बैक्टीरियल किडनी डिसीज, फ्यूरनकुलोसिस, माईकोबैक्टीरिओसिस व नोकार्डिओसिस जीवाणुओं द्वारा होने वाले अन्य रोग हैं। बैक्टीरियल किडनी डिसीज प्रमुख रूप से सालमन मछलियों में होता है। इस रोग का जनक रेनीवेक्टीरियम सालमोनीनेरम नामक जीवाणु है। इस रोग के प्रमुख लक्षणों में मछलियों के गलफड़ों में पीलापन, आँखों का आकार बड़ार प्रतीत होना, पेट का फूलना एवं शरीर पर रक्त लाल धब्बे दिखाई देना है। यह रोग भारत में पायी जाने वाली मछलियों में नहीं देखा गया है। नोकार्डिओसिस रोग नोकार्डिआ एस्टेराइड्स एवं नोकार्डिया कम्पाची नामक जीवाणुओं द्वारा होता है। इस रोग से ग्रसित मछलियाँ सुस्त गहरे रंग की हो जाती हैं। आन्तरिक संरचनाओं में वृक्क पर रक्त के लाल धब्बे दिखाई देते हैं। यह रोग प्रमुखतयः ट्राऊट मछली में देखा गया है। इसके नियंत्रण के लिए सल्फीसोक्साजोल का प्रयोग किया जाता है।

माईकोबैक्टीरिओसिस रोग माईकोवेक्टर मेराईनम एवं

माईकोवेक्टर चिलोनी नामक जीवाणुओं द्वारा फैलता है। इस रोग को मछलियों का क्षय रोग कहते हैं। ग्रसित मछलियाँ भोजन ग्रहण नहीं करती हैं। त्वचा का रंग भद्दा हो जाता है। आँखों का बाहर दिखाई देना, शल्कों का क्षय होना, जबड़ों की आकृति बिगड़ना आदि अन्य लक्षण भी दिखाई देते हैं। इस रोग से ग्रसित मछलियाँ एकान्तवासी हो जाती हैं। तैरने की प्रवृति भी विकृत (झटको में) हो जाती है। इसके नियंत्रण के लिए केनामाईसिन का प्रयोग लाभप्रद है।

## मछलियों में होने वाले सामान्य कवक जनित रोग

कवक सामान्यतः सड़े पदार्थों कार्बनिक तत्वों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। इनकी धागेनुमा आकृतियाँ (माइसिलियम) मछलियों के शरीर को भेदकर त्वचा एवं माँसपेशियों से पोषक तत्वों को प्राप्त करती हैं। ज्यादातर फफूँद मछलियों के कमजोर होने पर किसी अन्य कारणवश जख्म लगने वाले स्थान पर चिपक जाते हैं, अपनी वृद्धि कर मछलियों के घावों को बढ़ाते हैं, उनके शरीर से पोषक तत्व प्राप्त कर उनको कमजोर कर देते हैं। मछलियों के अण्डों में भी कवकों का संक्रमण देखा गया है, ऐसी स्थिति में मत्स्य पालकों को मछलियों एवं अण्डों की मृत्यु के कारण आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

## मछलियों के रोगजनक प्रमुख कवक

रोग जनक कवकों में सेप्रोलिग्निया, एक्लिया, ब्रेन्किओमाईकोसिस, इक्थियोफोनस, एफेनोमाईसिस, एसपरजिलस एवं फ्यूसेरियम प्रमुख हैं। ये कवक मछलियों में विभिन्न अवस्थाओं में द्वितीय रोग जनक का काम करते हैं।

## सेप्रोलिग्निया

सेप्रोलेग्निया कवक जनित रोग को सेप्रोलेग्नियासिस कहते हैं। इस रोग को कॉटन वूल डिसीज भी कहते हैं, क्योंकि इस कवक के हाइफी रोग जनित स्थान पर मोटी रूई जैसी परत बना देते हैं। यह कवक उन जल स्रोतों में ज्यादा पाया जाता है, जिनमें जैविक पदार्थ ज्यादा एकत्रित रहते हैं। कमजोर, जख्मी अथवा मृत मछली में ये कवक आसानी से विकसित हो जाते हैं। इनमें क्लोरोफिल अनुपस्थित होता है एवं कोशिका भित्ती उपस्थित होती है। ये एक कोशिकीय से बहुकोशिकीय तक के धागेनुमा आकार के हो सकते हैं। इनकी संख्या में वृद्धि अन्य मछलियों को संक्रमित करती है। यह कवक रूई नुमा, भूरा सफेद रंग लिये होता है, जो कि सभी उम्र की मछलियों के गलफड़ों, त्वचा, पंखों, मुँख, अण्डों एवं आँखों जैसे स्थानों पर मुख्य रूप से पाया जाता है। इस रोग के उपचार के लिए पोटैशियम परमैग्नेट, नमक, मेलाकाइट ग्रीन एवं फार्मलीन का प्रयोग किया जाता है।

## ब्रेकियोमाईकोसिस

यह रोग ब्रेकियोमाईकोसिस सेन्गुइनिस एवं ब्रेन्कियोमाईसिस डेमिग्रान्स कवकों द्वारा होता है। दोनों कवक मछली के गलफड़ों को प्रभावित करते हैं। इनके संक्रमण गलफड़ों की रक्तवाहनियाँ एवं उनके आस–पास के ऊतकों का विनाश कर देते हैं, जिससे गलफड़े सड़ने लगते हैं। यह रोग प्रायः सर्दी के मौसम में मछलियों में देखा गया है।●

**सारिणी–1**
**प्रमुख रोग एवं उपचार**

| रोग का नाम | दवा | उपयोग की दर | मध्यम | समय |
|---|---|---|---|---|
| हीमोरेजिक सेप्टीसीमिया | टेरामाईसिन | 20–25 मिग्रा/किग्रा | इन्जेक्शन | – |
| | ऑक्सीटेट्रसाइक्लीन | 75–80 मिग्रा/किग्रा | आहार द्वारा | 10–12 दिन तक |
| इडवार्डसिलोसिस | ऑक्सीटेट्रसाइक्लीन | 50–50 मिग्रा/किग्रा | आहार द्वारा | 10–12 दिन तक |
| | जल की गुणवत्ता में सुधार | – | – | – |
| विब्रिओसिस | ऑक्सीटेट्रसाइक्लीन | 70–80 मिग्रा/किग्रा | आहार द्वारा | 10–12 दिन तक |
| ड्रोप्सी | पोटैशियम परमैग्नेट | 1–5 मिग्रा/लीटर | जल में | प्रतिदिन ठीक होने तक |
| कतला की आँख का रोग | पोटैशियम परमैग्नेट | 1–5 मिग्रा/लीटर | जल में | प्रतिदिन ठीक होने तक |

# गोवंशीय पशुओं में संक्रामक गर्भपात (ब्रुसैलोसिस) का निदान व बचाव के उपाय

डी.डी. सिंह*, एस.एन. लाल*, एस.के. यादव** एवं ए.पी. राव***

यह मुख्य रूप से गोवंश तथा मनुष्यों का एक जीवाणु जनित रोग है, जोकि ब्रूसैला प्रजाति के जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग में प्रजनन अंगों, भ्रूण की झिल्लियों की सूजन, गर्भपात, बाँझपन तथा अन्य अंगों में स्थानीय क्षतियाँ उत्पन्न हैं। ब्रूसैलोसिस रोग गोवंश से मनुष्यों में फैलता है अतः इस रोग को जन स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत अधिक महत्व है। केवल गायें में ब्रूसैलोसिस रोग से भारत में प्रतिवर्ष अनुमानतः 24 करोड़ रूपयों की आर्थिक हानि होती है। प्रजनन योग्य गायों में ब्रूसैलोसिस रोग की आवृति 3–4 प्रतिशत पायी गयी है। रोग व्यापकीयता के अनुसार लगभग 30 लाख गोवंश इस रोग से ग्रसित हैं। जिसमें से तिहाई में गर्भपात होता है व इस प्रकार 10 लाख बछड़ों की हानि होती है। संक्रमण ग्रसित गोवंश की प्रजनन क्षमता में 20 प्रतिशत की कमी होती है अर्थात लगभग 6 लाख गायों पर इसका प्रभाव पड़ता है। पुनः ब्रूसैलोसिस से 25 प्रतिशत दुग्ध उत्पादन में भी कमी होती है।

## कारण

इस रोग का कारण ब्रूसैला एबॉर्टस प्रजाति का जीवाणु होता है। उपरोक्त प्रजाति का जीवाणु गोलाकृत तथा ग्राम निगेटिव गुण वाला होता है। जो ग्राम तकनीक से रंगने पर लाल रंग के होते हैं। ब्रूसैला एबॉर्टस को प्रयोगशाला में उगाने के लिए प्रारम्भ में लगभग 10 प्रतिशत कार्बन डाई ऑक्साइड की आवश्यकता होती है तत्पश्चात यह साधारण अवस्था में उग जाता है। विभिन्न प्रजाति के ब्रूसैला जीवाणुओं को रंगों, बैक्टीरियोफेज तथा उपापचय क्रिया के आधार पर अलग–अलग किया जाता है।

ब्रूसैला प्रजाति के जीवाणुओं को 10–15 मिनट के पासचुराइजेशन द्वारा समाप्त किया जा सकता है। कई अन्य विधियों द्वारा भी इसे नष्ट किया जा सकता है। गोवंश शरीर से बाहर जीवाणु 4 घंटों तक, सूर्य प्रकाश में 4 दिनों तक, गोमूत्र में 5 दिनों तक, कमरे के तापक्रम पर तथा ठण्डे स्थान पर 75 दिनों तक गर्भपात द्वारा निकाले भ्रूण में जीवित रहते हैं।

## रोग व्यापकीयता

समस्य पालतू पशु ब्रूसैलोसिस रोग के प्रति संवेदशनशील होते हैं। झुण्डों में सभी गोवंश रोग के प्रति संवेदनशील हो सकते हैं। भ्रूण गर्भाशय में संक्रमण ग्रसित हो सकते हैं परन्तु 4–5 माह की आयु में संक्रमण स्वतः समाप्त हो जाता है। प्रथम मादा ओसरों में रोग का अधिक प्रकोप होता है। साँड भी इस रोग के प्रति संवेदनशील होते हैं। रोग का संचरण कई प्रकार से हो सकता है। प्रायः दूषित भोजन, पानी एवं योनि के स्रावों द्वारा रोगों का संचरण होता है। त्वचा के घावों, नेत्र, श्लेष्मा, अयन या स्तन ग्रंथि तथा संभोग द्वारा भी रोग का संचरण होता है।

## लक्षण

जीवाणु शरीर में प्रवेश करने के पश्चात बीमारी उत्पन्न करने में 3 सप्ताह से 6 माह तक का समय लेते हैं। इस रोग में गोवंश में गर्भपात, स्थायी या अस्थायी बाँझपन, जेर न गिरना, वृषण शोथ, थनैला, जोड़ों में सूजन, दुर्बल बछड़ों का जन्म होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ब्रूसैलोसिस में संक्रमण के पश्चात अधिकांश गायों में गर्भकाल के अन्तिम तृतीय भाग (6–9 माह) में गर्भपात होता है। संवेदनशील गायों के झुण्डों में 90 प्रतिशत तक गर्भपात हो सकता है। कुछ गोवंश में गर्भपात के बाद जेर नहीं गिरती है। सर्वाधिक गर्भपात प्रथम तथा द्वितीय गर्भकाल में होते हैं जबकि इन पशुओं से सबसे आधिक उत्पादन प्राप्त होने की आशा होती है।

## विकृति

गोवंश में जीवाणु पाचन संस्थान, नेत्र श्लेष्मा, त्वचा, योनि, अयन इत्यादि द्वारा शरीर के अन्दर प्रविष्ट करते

*एसोसिएट प्रोफेसर, पशु रोग विज्ञान, **वरिष्ठ वैज्ञानिक, एवं अध्यक्ष, के.वी.के. मसौधा, अयोध्या, ***प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

हैं। जीवाणु पाचन संस्थान की श्लेष्मा में प्रवेश करने के पश्चात लसीका वाहिनियों में पहुँचकर या तो विभाजित होते हैं या नष्ट हो जाते हैं। इसके पश्चात थोरेसिक वाहिनी द्वारा रक्तप्रवाह में पहुँच जाते हैं जिसके फलस्वरूप जीवाणु रक्तता या बैक्टीरिमिया उत्पन्न हो जाती है। जोकि 2–4 सप्ताह में समाप्त होती है। पुनः जीवाणु गाभिन गर्भाशय, भ्रूण या गर्भाशय की झिल्लियों, अयन, लसीका ग्रंथियों, अस्थि मज्जा और प्लीहा में स्थिर हो जाते हैं। साँडों के प्रजनन अंगों तथा दोनों लिंगों के गोवंश के जोड़ों में भी जीवाणु स्थिर हो जाते हैं। अधिकतर रोगियों में जीवाणु संक्रमण के 2–4 माह पश्चात गाभिन गर्भाशय में दिखाई देते हैं और अपरा तथा अन्य झिल्लियों में विभाजित करते रहते हैं। इससे धीरे–धीरे गर्भाशय की झिल्लियाँ भ्रूण की झिल्लियों से अलग हो जाती हैं तथा अपरिपक्व भ्रूण बाहर निकल आता है। जिसे गर्भपात कहा जाता है। गर्भपात से कुछ पूर्व या बाद में जीवाणु लसीका ग्रंथियों तथा अयन में भी प्रकट होता है।

शव परीक्षण करने पर गायों में तीव्र, कम तीव्र या चिरकालिक प्लेसेन्टा रोग, जेर न गिरना एवं अंतः गर्भाशय शोथ आदि क्षतियाँ मिलती हैं। भ्रूण की झिल्लियाँ मोटी हो जाती हैं। थनैला, जोड़ों का शोथ आदि क्षतियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। गर्भपात से निकले भ्रूणों के फेफड़ों और हृदयावरण में शोथ देखा जाता है। नवजात बछड़ों में अत्यधिक दुर्बलता, कम वृद्धि तथा निमोनियाँ हो सकता है। साँडों में वृषण शोथ अधिवृषण शोथ, शुक्राशय शोथ एवं जोड़ों का शोथ उत्पन्न हो जाता है।

## निदान

ब्रूसैलोसिस रोग का निदान निम्न आधार पर किया जाता है।

### 1. रोग का इतिहास

गोवंश में गर्भपात, जेर रूकना, बाँझपन इत्यादि से रोग का संदेह किया जाता है।

### 2. क्षतियाँ

गर्भपात होने के पश्चात जेर में विशिष्ट प्रकार की क्षतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यह चमड़े की तरह का हो जाता है। इस प्रकार की विकृति किसी अन्य रोग में नहीं देखी जाती है।

### 3. एग्लूटिनेशन परीक्षण

ट्यूब एग्लूटिनेशन परीक्षण तथा रोज बंगाल प्लेट एग्लूटिनेशन परीक्षण द्वारा रक्त के सीरम का परीक्षण किया जाता है। समस्त विश्व में इस परीक्षण का ब्रूसैलोसिस निदान हेतु अत्यधिक उपयोग किया जाता है। परीक्षण के परिणाम की विवेचना के लिए टीका लगे पशु में 1:80 सीरम को तथा बिना टीका लगे गोवंश में 1:40 सीरम को रोग ग्रसित माना जाता है।

### 4. जीवाणु का पृथकीकरण

रोगी गोवंश के ऊतकों तथा स्रावों से जीवाणु का पृथकीकरण किया जाता है। भ्रूण के चतुर्थ पेट के पदार्थों, जेर, गर्भाशय के स्रावों एवं वीर्य से भी जीवाणु का पृथकीकरण किया जाता है। इन पदार्थों में जीवाणुओं को इम्यूनोपरोक्सीडेज या इम्यूनोफ्लोरीसेंस्स द्वारा प्रदर्शित भी किया जा सकता है।

### 5. ब्रूसैला रिंग परीक्षण या एर्बाटस बैंग रिंग परीक्षण

इस परीक्षण द्वारा गाय में ब्रूसैलोसिस का निदान किया जाता है। परीक्षण हेतु ब्रूसैला एबॉर्टर्स के रंगीन प्रतिजन को 2 मिली पूर्ण दूध में मिश्रित करते हैं। परीक्षण नली को थोड़ी देर रखने के पश्चात रंजित जीवाणु कोशिकाएँ दूध की क्रीम के साथ ऊपर की ओर जाती हैं। यदि गाय ब्रूसैला संक्रमण से ग्रसित होती तो बैंगनी रंग की तह बन जाती है। इस घनात्मक परीक्षण में जीवाणुओं का एग्लूटिनिन द्वारा एग्लूटिनेशन हो जाता है तथा रंजित जीवाणु के समूह वसीय पिण्डों के साथ दूध की सतह पर पहुँच जाते हैं। ऋणात्मक परिणामें में दूध का रंग हल्का बैंगनी या क्रीम रंग का श्वेत रहता है। इस परीक्षण का उपयोग गायों के झुण्डों में रोग निदान हेतु किया जाता है।

## उपचार

इस रोग का गोवंश में कोई उपचार नहीं है।

## बचाव व रोकथाम

ब्रूसैलोसिस रोग से बचाव निम्न उपायों को अपनाकर किया जा सकता है।

### 1. टीका

कॉटन स्ट्रेन–19 नामक टीके का उपयोग रोग के बचाव हेतु किया जाता है। संक्रामक उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं को मंद या कमजोर करके इस टीके का निर्माण किया जाता है। यह टीका 4–8 माह की आयु के गोवंश को लगाया जाता है। परन्तु भारतीय गोवंश में 6–12 माह की आयु में भी लगाया जा सकता है। कॉटन स्ट्रेन–19 टीका बछड़ों की अपेक्षा अधिकतर बछियों को लगाया जाता है। टीके को 5 मिली मात्रा अधोत्वचा विधि से लगायी जाती है। बछियों में टीका लगाने का प्रमुख उद्देश्य यह है कि टीका लगी बछियों का ऐसा झुण्ड उत्पन्न किया जाए जो गर्भपात के संक्रमण को सहन कर सके। प्रौढ़ गायों को टीका लगाने से गर्भपातों की संख्या कम हो जाती है। प्रजनन कार्य हेतु प्रयोग होने वाले साँडों में यह टीका नहीं लगाना चाहिए। जिस किसी गौशाला में बुसैला रोग का पता चले तो नियंत्रण हेतु सभी गायों में यह टीका लगा देना चाहिए, ताकि रोग नियंत्रित हो सके।

### 2. स्वच्छता

चूँकि गर्भपात के समय हुए स्रावों, मृत बछड़ों व जेर द्वारा जीवाणुओं का प्रसार होता है। अतः इन पदार्थों का विशेष सावधानी के साथ गोशालाओं से बाहर गड्ढों में दबा देना चाहिए। गोशालाओं से रोग उन्मूलन हेतु परखना व अलगाना विधि अपनायी जाती है।

### 3. परखना व अलगाना

इस विधि के अंतर्गत गोशाला में दो अलग–अलग झुण्ड रखते हैं। एक झुण्ड में रोगमुक्त व दूसरे में रोग प्रभावित गोवंश रखे जाते हैं। सभी गोवंश का हर 3–4 माह पर परीक्षण किया जाता है तथा छूतग्रस्त गोवंश को छूतग्रस्त झुण्ड में पहुँचा दिया जाता है तथा उनके रहने, चारे, दाने व सेवकों की व्यवस्था भी अलग रखी जाती है। इन गायों के बछड़ों व बछड़ियों का निरन्तर परीक्षण किया जाता है। रोग मुक्त मिलने पर उन्हें मुख्य झुण्ड में मिला दिया जाता है।

### जनस्वास्थ्य पर प्रभाव

मनुष्य भी ब्रूसैला प्रजाति के जीवाणुओं के प्रति संवेदनशील है तथा इनमें ब्रूसैला जीवाणुओं से अंडूलेट ज्वार, गर्भपात, बाँझपन, जोड़ों में दर्द, हल्का बुखार, शरीर में टूटन, रात्रि में पसीना आना, वृषणों की सूजन, कमजोरी, पीठ तथा गर्दन में दर्द आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ये रोग अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रो में या उन लोगों को होते हैं जो कि रोग ग्रसित गोवंश के सम्पर्क में आते हैं अथवा जो बिना पास्चुराईजड दुग्ध का उपयोग करते हैं। गोशालाओं में कार्य करने वाले पशु सेवक, पशु चिकित्सक, पशु पालक आदि इस रोग द्वारा बहुत अधिक प्रभावित होते हैं तथा ये लोग गोवंश में इस रोग के प्रसार में सहायता करते हैं।●

## अमूल्य सुझाव

- ऊसर व बंजर भूमि का उपचार कर कृषि योग्य बनाकर खेती के प्रयोग में लाएं।
- सिंचाई जल उपयोग में बृद्धि हेतु ड्रिप एवं स्प्रिकलर पद्धति पर बढ़ावा देना तथा इसके प्रयोग पर प्रशिक्षण प्रदान कर इसे बढाने तथा क्रान्तिक अवस्थाओं पर उचित मात्रा में सिंचाई करें।
- कृषि लागत में कमी हेतु कृषि यन्त्रीकरण का प्रयोग कर जीरो टिलेज, सीडड्रिल व कम्बाइन हार्वेस्टर के साथ भूसा बनाने वाली मशीन के प्रयोग पर बल दिया जाय।
- मृदा स्वास्थ्य बढ़ानें के लिए जैविक उर्वरक, कार्बनिक खाद, फसल अवशेषों का प्रबन्ध व मृदा स्वास्थ्य कार्ड के अनुसार उर्वरकों के संतुलित प्रयोग पर बल दिया जाना जिससे उत्पादन बढानें के साथ लागत में कमी लावे।

# अगस्त माह में किसान भाई क्या करें

## फसलों में

डॉ. सौरभ वर्मा
सह प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)

(1) सीधे बोये धान में यदि पहली निराई न की गयी हो तो निराई अवश्य करें। इसके बाद जो फसल एक माह की हो गयी हो, उसमें 30 किग्रा नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से टापड्रेसिंग करें।

(2) मक्का की संकर एवं संकुल प्रजातियों के लिए क्रमशः 30 एवं 20 किग्रा नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से टापड्रेसिंग नर मंजरी निकलते समय करें।

(3) दाना पड़ने की अवस्था पर यदि वर्षा न हो तो सिंचाई अवश्य करें।

(4) उर्द, मूँग तथा अरहर में यदि पहली निराई न की गयी हो तो शीघ्र ही खरपतवारों को निकाल दें।

(5) उर्द, मूँग तथा अरहर के पौधे घने हों तो निराई करते समय बिरलीकरण कर दें। कतार से बोयी गयी फसल में अरहर की पौधों से पौधों की दूरी 20–24 सेमी रखें।

## सब्जी एवं उद्यान में

डॉ. एस. के. वर्मा
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष

(1) जाड़े एवं बसन्त वाली टमाटर तथा बैंगन की पौध इस माह के प्रथम एवं दूसरे पखवारे में डालें।

(2) मुख्य समय में तैयार होने वाली गोभी की पौध माह के प्रथम सप्ताह में डालें तथा पिछैती एवं मध्यम किस्मों की पौध माह के दूसरे पखवारे में डालें।

(3) अगेती पात गोभी की पौध इस माह के दूसरे पखवारे में डालें।

(4) अगहनी गोभी, खरीफ प्याज, जाड़े की टमाटर और बैंगन की पौध की रोपाई करें।

(5) यदि सूखा की स्थिति हो तो गाजर, सेम, लोबिया, भिण्डी (बीज वाली फसल), मूली, बारहमासी करेला, लौकी नेनुआ की बुवाई कर सकते हैं।

(6) नये बाग लगाने का यह सर्वोत्तम माह है। पहले से तैयार गड्ढो में पौधों की रोपाई करें। यदि पहले से गड्ढे नहीं तैयार किये गये हैं तो आम, आँवला, बेर के लिये 75 सेमी व्यास तथा इतने ही गहराई के गड्ढे खोदकर खाद एवं मिट्टी की समान मात्रा भरकर पौधे रोपित कर सकते हैं।

(7) नये बागों की निराई–गुड़ाई द्वारा खरपतवार निकालकर थाले साफ रखें। पौधों के मूल वृन्त में यदि फुटाव आ रहा हो तो उसे निकाल दें। आवश्यकता पड़ने पर रोपित पौधों को सहारा दें। बागो में जल निकास का उचित प्रबन्ध करें। गोबर की सड़ी खाद अथवा कम्पोस्ट खाद का उपयोग करें। बाग में यदि हरी खाद के लिए सनई, ढैंचा अथवा मूँग की बुवाई की गयी तो पलटाई करके पानी भर दें।

(8) पुराने बागों की एक अच्छी जुताई कर दें, जिससे गिरी हुई पत्तियाँ एवं अन्य कूड़ा करकट सड़ सकें और खर–पतवार नष्ट हो सके।

## पौध संरक्षण

डॉ. वी. पी. चौधरी एवं डॉ. पंकज कुमार
सहायक प्राध्यापक (पादप रोग)

(1) धान में खैरा रोग के नियंत्रण के लिए 5 किग्रा जिंक सल्फेट तथा 20 किग्रा यूरिया अथवा 2.5 किग्रा बुझे हुए चूने को 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(2) धान की फसल में कीटों के नियंत्रण के लिए फास्फेमेडान 250–300 मिली प्रति हेक्टेयर 800 से 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

(3) मक्का में तुलसिता रोग के नियंत्रण के लिए जिंक कार्बोमेट रसायन 2 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 800–1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

(4) धान में झोंका रोग नियंत्रण के लिए जिंक अथवा एग्रीमाइसीन 75–100 ग्राम को 800–1000 लीटर पानी मे घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

## पशुपालन

डॉ. एस.एन. लाल
प्राध्यापक (पशु विज्ञान)

(1) पशुओं के अच्छे स्वास्थ्य के लिए जो किसान भाई हरे चारे की बुवाई अभी तक न कर पाये हों वे इस माह के प्रथम सप्ताह तक मीठी हरी, मक्का, ज्वार, बाजरा, एमपी चरी तथा लोबिया की बुवाई अवश्य कर दें।

(2) भैंसों में ब्यांत का समय चल रहा है अतः नवजात पड़वा/पड़िया को भैंस का प्रथम दूध खींस तीन दिन तक अवश्य पिलाएं। इसमें बच्चों में विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बचाव की सम्भावना बढ़ जाती है।

(3) पशुओं को जहरी बुखार, लंगड़िया तथा गलाघोंटू बीमारी का टीका यदि अभी तक न लगा हो तो इस माह में अवश्य लगवा दें।

(4) जो भेड़, बकरी, गरमी में आई हो उन्हें प्राकृतिक या कृत्रिम रूप से गर्भित करा दिया जाए।

(5) बरसात में बकरियों को कुमड़ी रोग से बचाव हेतु प्रति बकरी प्रतिदिन दो टिकिया हेट्राजॉन अथवा केरीसाइड दवा 15 दिन तक दिया जाए।

(6) मुर्गियों से अधिक अण्डा व मांस उत्पादन के लिए उन्हें बहुत दिनों का पुराना दाना नहीं देना चाहिए, क्योंकि बरसात के मौसम में दानें में फफूँदी लगने की सम्भावना अधिक रहती है।

(7) मुर्गियों की खूनी पेचिश से बचाव हेतु उनके दाने में एन्टीकॉक्सीडियोस्टेट दवा मिलाकर दिया जाए।

(8) बरसात के मौसम में मुर्गियों का बिछावन गीला हो जाता है जिससे तरह–तरह की समस्या उत्पन्न होती है अतः गीले बिछावन को साफ करके नया बिछावन डालें अथवा चूना मिलाकर गुड़ाई कर दें।●

संकलनकर्ता : डॉ. आर.आर. सिंह, प्राध्यापक, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

# प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

**प्रश्न : धान में खरपतवार नियंत्रण हेतु कौन सी दवा का प्रयोग करें?**
(श्री राधेश्याम, ग्राम काला, जनपद अयोध्या)

**उत्तर :** धान में खरपतवार नष्ट करने के लिए खुरपी या पैडीवीडर का प्रयोग करें। यह कार्य खर पतवारनाशी रसायनों द्वारा भी किया जा सकता है। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु 2–4 डी सोडियम साल्ट का 400 ग्राम से 500 ग्राम सक्रिय रसायन प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया जा सकता है। इसका प्रयोग धान की रोपाई के एक सप्ताह बाद और सीधी बुवाई के 20 दिन बाद करना चाहिए। रोपाई वाले धान में घास जाति एवं चौड़ी पत्ती वाले खर पतवार के नियंत्रण हेतु ब्यूटाक्लोर 50 ईसी 3.3 लीटर प्रति हेक्टेयर का रोपाई के 3–4 दिन के अन्दर प्रयोग करना चाहिए। ब्यूटाक्लोर गीली भूमि में एवं बेन्थियोकार्ब का प्रयोग उपरिहार में करना अधिक उचित होगा।

**प्रश्न : दुधारू पशुओं को रातब/संतुलित आहार किस अनुपात में दिया जाय?**
(श्री राधेश्याम वर्मा, ग्राम भीखापुर, जनपद अयोध्या)

**उत्तर :** दुधारू पशुओं को दाना उनके दुग्ध उत्पादन की मात्रा के ऊपर निर्भर करता है। दुधारू भैंस को 2.5 किग्रा दूध उत्पादन पर 1 किग्रा दाना तथा गाय को 3.0 किग्रा दूध उत्पादन पर 1.0 किग्रा दाना देना चाहिए।

**प्रश्न : धान की फसल में धान की पत्ती भूरी होकर जल जाया करती है, उपाय बतावें?**
(श्री राम शंकर पाण्डेय, ग्राम बरहुआं, जनपद बस्ती)

**उत्तर :** आपके खेत में खैरा रोग लगा है। यह रोग जस्ते की कमी से होता है। इसके नियंत्रण के लिए 5 किग्रा जिंक सल्फेट तथा 16 से 20 किग्रा यूरिया 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

**प्रश्न : अमरूद की खेती कैसे करें?**
(श्री रिंकू यादव, ग्राम गद्देपुर, जनपद अयोध्या)

**उत्तर :** इलाहाबाद सफेदा, लखनऊ–49 चित्तीदार, लालगूदे वाला, बेदाना अमरूद की प्रमुख किस्मे हैं। इसके पौधे लगाने का उपयुक्त समय जुलाई–अगस्त का महीना है। पौध लगाने के लिए 75 सेमी लम्बे और 75 सेमी चौड़े तथा एक मीटर गहरे गड्ढे खोदकर 15–20 दिन तक खाली छोड़ देना चाहिए। इसके बाद उनमें सड़ी गोबर की खाद और मिट्टी बराबर मात्रा में मिलाकर गड्ढे में भरकर सिंचाई कर देना चाहिए। इस प्रकार तैयार किये गये गड्ढे में पौध लगाना चाहिए।

**प्रश्न : हमारे खेत में मोथा अधिक उगता है इसको खत्म करने का उपाय बतायें?**
(श्री प्रेम नाथ, ग्राम देवरिया, जनपद अयोध्या)

**उत्तर :** खेत खाली रहने पर ग्रीष्मकालीन 2–3 जुताई करें। खरीफ में शीघ्र बढ़ने वाली फसल जैसे सनई या ढैंचा हरी खाद के लिए अथवा ज्वार या बाजरा लोबिया के साथ चारे के लिए उगायें। खेत में अच्छी प्रकार लेव लगाकर धान की रोपाई करें। धान, बाजरा, मक्का व ज्वार में संस्तुति के अनुसार 2, 4 डी एस्टर शाकनाशी रसायन का प्रयोग करें।

किसी भी फसल में शुरू की निराई 15–20 दिन के अन्तराल पर करें और निराई करते समय मोथा के पौधों को समूल गाँठ सहित निकाल कर नष्ट करें। कुछ अन्य शाकनाशी रसायनों का प्रयोग भी विभिन्न फसलों में किया जा सकता है, जिससे अन्य घासों के साथ–साथ मोथा भी नष्ट हो जायेगा।

**प्रश्न : मुर्गियों से अधिक अण्डा उत्पादन प्राप्त कैसे करें?**
(श्री वंशराज, ग्राम सहनवा, जनपद अयोध्या)

**उत्तर :** मुर्गियों से अधिक अण्डा उत्पादन प्राप्त करने हेतु उन्नत नस्ल की सफेद लेग हार्न मुर्गियों को पालकर उन्हें संतुलित मुर्गी आहार दें जिससे पूरे साल में 300 से 330 अण्डे प्राप्त किया जा सकता है।●

पंजीयन संख्या - 54461/91

डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

# प्रसार निदेशालय

## आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

## कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

## के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

| पुस्तक | मूल्य रु. |
|---|---|
| आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध | 20.00 |
| जिमीकन्द की खेती | 15.00 |
| मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता | 12.00 |
| किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक | 50.00 |
| फसल उत्पादन तकनीक | 35.00 |
| जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल | 10.00 |
| फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार | 50.00 |
| गन्ने की आधुनिक खेती | 15.00 |
| जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक | 20.00 |
| केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन | 10.00 |
| व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन | 20.00 |
| फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन | 25.00 |
| आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्जियों की उत्पादन तकनीक | 25.00 |
| गृहणियों के लिए बेकिंग कला | 25.00 |
| स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व | 20.00 |
| गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार | 20.00 |
| मछली पालन | 40.00 |
| फसल अवशेष प्रबंधन | 30.00 |

प्रति रूपये 25/–मात्र

मुद्रित

सेवा में,
श्री/श्रीमती

प्रेषक:
**प्रसार निदेशालय**
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से प्रो. ए.पी. राव निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित